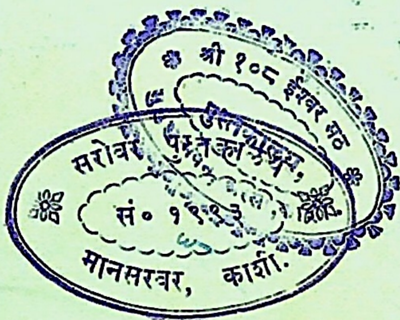




प्रकाशक—
रिखबदास वाहिती,
आर० डी० वाहिती एण्ड को०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।



मुद्रक—
रिखबदास वाहिती
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, चोरबगान
कलकत्ता।


श्री १०८ ईश्वर
सरोवर पुस्तकालय,
सं०
मानसरवर, काशी.



वके परिवारमें दो पुत्र और एक कन्या थी। बड़े पुत्रका
घुनन्दन तथा छोटेका शिवनन्दन था और कन्याका नाम जग-
था, जिसका विवाह भागलपुरके एक धनी अथच सत्पुरुषसे
का था। बड़ा रघुनन्दन बी० ए० परीक्षामें उत्तीर्ण होकर
वृत्ति प्राप्त कर अब बी० एल० परीक्षाकी तय्यारियाँ कर
था और छोटा प्रवेशिका परीक्षामें एक बार असफल होकर
से सफलता प्राप्त करनेका उद्योग कर रहा था।

रघुनन्दनका विवाह मिर्ज़ापुरके एक धनी गृहस्थकी कन्या-
हुआ था। कन्याका नाम लीलावती था। छोटेका पढ़नेके ही
गृहस्थके यहाँ। उसकी स्त्रीका नाम चम्पावती था।

लीलावती देखनेमें परम सुन्दरी थी, परन्तु उसमें कई दुर्गुण
थे। सबसे बड़ा दुर्गुण तो यह था, कि जब कभी समय
तभी वह पुस्तक लेकर पढ़ने बैठ जाती थी और अपनी
तोलियोंको भी पढ़नेके लिये आग्रह किया करती थी। दूसरा
ण यह था, कि सफाईपर उसका विशेष ध्यान रहता था और
का कमरा खूब सजा रहता था। अड़ोस पड़ोसकी स्त्रियाँ
कभी उसके कमरेको देखतीं तो कहतीं कि यह मेम साहबका
रा है और लीलावतीको कभी कभी वे मेम साहब, रानी
हया आदि कहकर सम्बोधन किया करती थीं। तीसरा
र्गुण उसमें यह था, कि उसे किसीसे उत्तर प्रत्युत्तर कर झगड़ा
ड़ा देनेकी अपेक्षा चुप रहकर अथवा हँसकर उस बातसे
वा देना ही अच्छा मालूम होता था। वह कलहसे दूर ही रह-

चाहती थी और चौथा तथा सबसे भयानक दुर्गुण यह थ.
वह सदा हँसमुख बनी रहती थी और क्रोध अथवा अभिमा
उसमें लेश भी नहीं दिखाई देता था।

गुणोंमें रूप और दुर्गुणोंमें इतने पदार्थ लेकर लील
अपने श्वशुरके घर पधारी थी। रूपके कारण तो वह
अपने सासकी दुलारी बनी रही; परन्तु धीरे धीरे जब उ
ये गुण प्रकट होने लगे तब उसकी सास सदा ही उससे अ
सन्न रहने लगीं। इसका भी कारण था। लीलावतीकी सास
उसका यह पढ़ना लिखना और सफाई बिल्कुल ही नापसन्द
और इस दुर्गुणके लिये वह बराबर लीलावतीकी ताड़ना कि
करती थीं। कहती थीं,—भले घरकी बहू बेटियोंको पढ़ने लिख
से क्या मतलब? क्या कहीं नौकरी करने जाना है?"

लीलावती यह बातें सुनती थी, पर सुनकर भी अनसुनी कर
देती थी। उसकी यह लत ऐसी बुरी लगी थी, कि कि
प्रकारसे छूटती ही न थी। मानों इसका उसे एक नशा हो
गया था।

लीलावतीकी सास प्रियम्वदा जानती थी, कि लीत
किस समय पढ़ती लिखती है, इसी लिये वह किसी
दिवस दोपहरके समय चुपचाप उसके कमरेके द्वारपर जा पहुँच
और मनमानी भर्त्सनाकर लौट आती थीं।

लीलावती समझती थी, कि उसमें यह दोष है। इस दो
ग देनेकी कभी कभी उसे इच्छा भी होती थी; परन्तु

भी वह उसे त्याग नहीं सकती थीं; क्योंकि बालकपनसे उसके माता-पिताने उसे जैसी शिक्षा दी थी, वह शिक्षा उसकी नस नसमें प्रवेश कर गई थी और उसकी एक दूसरी प्रकृति ही बन गई थी। दूसरे रघुनन्दन उसे सदा नवीन उपदेशप्रद पुस्तकें लाकर दिया करता था और बराबर पढ़नेके लिये आग्रह किया करता था। इस समय लीलावती बड़े फेरमें पड़ जाती थी। वह किसकी आज्ञा पालन करे? पतिकी आज्ञा न माननेसे भयानक पातक और सासकी आज्ञा न माननेसे कलह! एक ओर खाई तो दूसरी ओर भयानक गड्ढा था। अन्तमें बहुत कुछ सोच विचार कर लीलावतीने गड्ढेमें गिरना ही स्थिर किया और उससे निकलनेका क्या उपाय सोचा, सो पाठकोंको आगे चलकर मालूम होगा।

पहले ही कह चुके हैं, कि व्रजेन्द्रनारायणकी एक कन्या भी थी, जिसका नाम जगदम्बा था। जगदम्बा रूपमें सुन्दरी और गुणमें गुणवती थीं; परन्तु विधिके विधानको कौन मेट सकता था, उसका विवाह भागलपुरके एक धनी घरके एकमात्र सन्तान शारदाचरणसे हुआ था; परन्तु विवाहके दूसरे ही वर्ष शारदाचरण एक दिन मकर संक्रान्तिके दिन गङ्गा स्नान करने गया और फिर कहाँ लापता हो गया, कि बहुत कुछ खोज करनेपर भी उसका पता न लगा। अन्तमें उसके परिवारवाले उसकी ओरसे निराश हो बैठें। लोगोंने समझ लिया था, कि वह गङ्गामें डूबकर मर गया।

जिस समय यह समाचार बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके यहाँ पहुँचा, उस समय बड़ा हाहाकार मचा। जगदम्बाने भी सुना, कि उसके भाग्य-आकाशका एकमात्र नक्षत्र टूट गया। कई दिनोंतक बाबू ब्रजेन्द्र नारायणके यहाँ रोना-पीटना मचा रहा ; परन्तु शोक और प्रसन्नता तो कभी स्थायी नहीं रहते। धीरे धीरे शोकका ह्रास होता गया और बाबू 'ब्रजेन्द्रनारायणके घरकी शोकाग्नि भी धीरे धीरे निर्वापित होती दिखाई देने लगी।

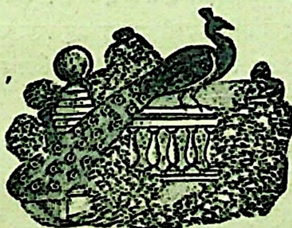
परन्तु इसके बाद ही जगदम्बाने अपना रंग ढंग, रहन-सहन, आचार-विचार सब कुछ बदल दिया। पहले उसके शरीरपर रंग-बिरंगी साड़ियाँ और बहुमूल्य वस्त्र शोभा पाते थे ; परन्तु अब केवल सफेद रंगकी गाढ़ी धोतियाँ दिखाई देने लगीं। जो केश एक समय वेणी-बद्ध हो दर्शकोंके हृदयपर नागिन सी चोट करते थे, वे अब खुले और अबद्ध रहनेके कारण जटाके रूपमें परिणत हो गये। जगदम्बाने अपने शरीरके अलङ्कार भी त्याग दिये। वह कहती—जब असली अलङ्कार ही चला गया तो इस वृथाके अलङ्कारोंसे क्या लाभ ?

अपनी कन्याका यह आचार-विचार देखकर बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके हृदयमें कष्ट भी होता था और समय समयपर उसको इतने शुद्धाचारसे रहते देखकर सन्तोष भी। माताकी आँखोंसे पहले तो बराबर आँसुओंकी धारा बहा करती थी ; परन्तु नित्य-प्रति किसी पदार्थको देखते देखते जब आँखोंको अभ्यास हो जाता है तब फिर उनका प्रभाव भी नहीं पहुँचता।

यही दशा बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके घरकी थी। ब्रजेन्द्रनारायण बड़े ही सात्त्विक और सन्तोषी पुरुष थे। वे कहते थे, कि अच्छे-से अच्छे और बुरेसे बुरे कार्यमें भी ईश्वरका हाथ अवश्य रहता है और वह जो कुछ करता है सो मंगलके लिये ही करता है। दुःख सुख अपने अपने कर्मका फल है। मैंने कोई ऐसा दुष्कर्म किया है, तभी यह दुःख अपनी आँखों देखना पड़ा है।"

यही सब सोचकर वे सन्तोषसे चुप मारे बैठे हुए थे और अकातर भावसे अपना नियम पालन करते जाते थे। अब भी उनके यहाँ धार्म्मिक कृत्योंका अभाव नहीं था, ईश्वरपर दोष देनेका किसीको साहस न होता था। जो कुछ होता था, सब नियमबद्ध रूपसे होता चला जाता था।

यही अवस्था उस समय बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके गृहस्थीकी थी, जिस समयकी बातें हम लिख रहे हैं।



तीसरा परिच्छेद।

वल्लभदास।

बाबू व्रजेन्द्रनारायणके मकानके पास बाबू वल्लभदास नामके एक और भी मनुष्य रहते थे। जिस समयकी बातें हम कह रहे हैं, उस समय उनकी अवस्था लगभग चालीस वर्षके हो चुकी थी। गोरा रङ्ग, बलिष्ठ शरीर, देखनेमें सुन्दर और बातचीतसे चतुर और साहसी मालूम होते थे। इनकी आमदनी भी अच्छी थी और जनतामें नाम भी खूब था; क्योंकि आप सामाजिक कुरीतियोंपर सभा-समितियोंमें बड़े जोरदार व्याख्यान दिया करते थे। इनका कथन था, कि प्राचीन परिपाटीपर चलनेके कारण ही इस समय भारतवर्षकी यह दुरवस्था हो रही है। मनुष्यको उचित है, कि जैसी बहे बयार पुठि पुनि तैसी दीजे। इस समय विदेशी जातियोंसे हमारा संघर्ष है। समय काल बदल गया है। अब हमलोगोंको उसी पथका अनुसरण करना चाहिये, जिसमें हमलोग उस विदेशी संघर्षमें नीचे न गिर जायें। अतः ये बराबर समाजको जाग्रत रखनेकी चेष्टा किया करते थे। जब कभी आवश्यकता पड़ती तभी ये अपने जोरदार शब्दोंके जोरसे समाजको हिला दिया करते थे। लोग इनकी धाक मानते थे। पीठ पीछे "सुधारक, नास्तिक" प्रभृति विशेषण देकर लोग भले ही इन्हें सम्बोधन किया करें, परन्तु मुंहपर कुछ भी बोलनेका

किसीको साहस नहीं होता था। आमदनी भरपूर, तीन पुत्र, दो कन्याएँ, स्त्री तथा अन्य आत्मीयोंसे इनका परिवार भी भरा-पूरा था, फिर इनका आदर सम्मान और दबदबा होनेमें क्या सन्देह है ?

बाबू वल्लभदास तथा व्रजेन्द्रनारायणमें यद्यपि धार्म्मिक मत-भेद था; परन्तु दोनों सदा जी खोलकर मिलते जुलते तथा अभिन्न हृदय मित्रोंसा व्यवहार करते थे। सभा समितियोंमें दोनों एक साथ ही जाते थे; परन्तु दोनोंके व्याख्यानोंमें अन्तर था। एकसे प्राचीन रीति-नीतिको आदर्श माननेकी झलक टपकती थी, तो दूसरा डंकेकी चोट कहता था, कि अपने पुराने फटे कपड़ोंको त्यागो, कलियुगमें धर्म्म तो लङ्गड़ा हो गया है, अब उस लङ्गड़ेके पीछे क्यों दौड़ते हो ? अब नवीन कर्म्म धारण करो, उसको पिंजड़ापोलमें रख केवल थोड़ा चारा देते जाओ।

सन्ध्या हो चुकी थी, बाबू वल्लभदास अपने कमरेमें बैठे हुए मन ही मन कुछ सोच रहे थे, कि इसी समय एक नवयुवक वहाँ आ पहुँचा। नवयुवक देखनेमें बड़ा ही सुन्दर था और उसकी बात चीतसे भी नम्रता प्रकट होती थी।

युवकका नाम कमलेश्वरनाथ था। उसे देखते ही वल्लभदासने पूछा,—"क्यों अच्छे तो, आज बहुत दिनोंपर आये ?"

युवकने कहा,—"हाँ, यों ही कुछ कामकी झंझटमें पड़ा था। इसी कारणसे न आ सका।"

वल्लभदास बोले,—"क्यों, क्या विवाहकी झंझट थी ? मैंने सुना था, कि तुम्हारा दूसरा विवाह होनेवाला है।"

युवकने हँसकर कहा,—"हाँ, परन्तु अभी विवाह करनेकी इच्छा नहीं है।"

वल्लभदास बोले,—"कारण ? क्या पात्री पसन्द नहीं आई ?"

युवकने कहा,—"देखने भी न गया। अब उस ओर इच्छा भी नहीं है।'

वल्लभदास बोले,—"कारण भी तो बताओ।"

युवकने माथा झुकाकर कहा,—"देखिये, आप जानते हैं कि मेरी माता बहुत बूढ़ी हो गई हैं। इस समय उन्हें सहारा देने योग्य एक स्त्रीकी आवश्यकता है, न कि दस वर्षकी एक कन्यासे विवाहकर उनके माथेपर और एक बोझा डाल दूँ और सच तो यह है, कि मैं तो आपके मतका पक्षपाती हूँ।"

वल्लभदास बोले,—"कहना तो तुम्हारा यथार्थ है; परन्तु कोई पात्री भी तो हो।"

युवक बोला,—"पात्री तो एक है अवश्य, परन्तु नाम लेनेका साहस नहीं होता और मैंने भी यही स्थिर कर लिया है, कि अन्यसे विवाह न करूँगा ?"

वल्लभदास बोले,—"क्यों, नाम लेनेमें क्या हर्ज है ? यहाँ तो कोई सुननेवाला भी नहीं है, हो सका तो मैं तुम्हारे लिये यथा-साध्य चेष्टा भी करूँगा।"

युवकने धीमे स्वरमें कहा,—"देखिये, आप कहते हैं तो मैं बता देता हूँ; परन्तु बात अभी गुप्त ही रखियेगा, प्रकाशित हो गई और काम भी न बना तो बड़ा ही अपकार होगा।"

वल्लभदासने कहा,—"इसमें डरकी कौनसी बात है। यह तो पाप नहीं है, जिससे तुम्हारे मनमें भय उत्पन्न हो। कहो, साफ साफ बताओ।"

युवक और भी धीमे स्वरमें बोला,—"आपके पास मैं इसी आशासे आया हूँ, कि इस कार्यमें आप मेरी सहायता करेंगे। देखिये, जिनके विषयमें मैं आपसे कुछ कहा चाहता हूँ, वे आपके मित्र हैं और आपके मकानके पास ही रहते हैं, यदि उनकी कन्यासे ही आप मेरा विवाह-सम्बन्ध करा सकें तो मेरी मनोभिलाषा पूर्ण हो।"

इतना कहकर युवक सतृष्ण दृष्टिसे वल्लभदासके चेहरेकी ओर देखने लगा। वल्लभदास कुछ देरतक सोचते रहे। इसके बाद बोले,—"शायद तुम्हारी दृष्टि किसी तरह जगदम्बापर पड़ गई है और तुम उससे ही विवाह करना चाहते हो।"

युवक बोला,—"हाँ, महाशय! मेरी यही इच्छा है। और आपमें बड़ा सामर्थ्य है। यदि आप किसी तरह यह शुभ कार्य सम्पन्न करा सकें तो वास्तवमें मेरा जीवन सुखमय हो जाये।"

वल्लभदासने कहा,—"काम तो तुमने कठिन बताया है; परन्तु उद्योग करना कर्त्तव्य है। मैं तुम्हारे लिये यथासाध्य चेष्टा करूँगा।"

वल्लभदास बड़े उद्योगी पुरुष थे। उन्हें अपनी कार्य-कुशलता-पर बड़ा विश्वास था और थी भी बात ऐसी ही कि जिस कार्य-

को वे अपने हाथमें उठा लेते थे, उसे सहजमें छोड़ भी न देते थे।"

वल्लभदासकी आश्वासन वाणी सुनकर युवक कमलेश्वरनाथको कुछ सन्तोष हुआ। उसने तुरत ही उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा,—"जब आपने इस कार्यको अपने हाथमें लिया है, तब सिद्धि तो अवश्य ही होगी; परन्तु चेष्टामें किसी प्रकारकी त्रुटि न होनी चाहिये। इसमें यदि कुछ खर्च भी पड़े तो कोई चिन्ता नहीं।"

वल्लभदासने उत्साहसे कहा,—"नहीं, त्रुटि क्यों? शुभस्य शीघ्रम्। तुम अभी मेरे साथ चलो। जरा उसके पिताको तुम्हें दिखा दूँ। देखो, मैं तो वहाँ बैठा रहूँगा; परन्तु तुम वहाँसे जल्दी ही चले आना, जिसमें मुझे उनसे एकान्तमें बातें करनेका अवसर मिले। समझ गये। आज अच्छा दिवस है, चलो आजसे ही कार्य आरम्भ किया जाये।"

इसके बाद ही दोनों उठकर ब्रजेन्द्रनारायणके मकानकी ओर चले।

पहले ही कह चुके हैं, कि बाबू ब्रजेन्द्रनारायणका मकान पास ही था। कुछ ही मिनटोंमें दोनों वहाँ जा पहुँचे।

बाबू ब्रजेन्द्रनारायण अपने बैठकखानेमें बैठकर महाभारत की कथा ध्यानसे पढ़ रहे थे। उनके पास ही बैठी हुई जगदम्बा अपने पिताके मुँहसे निकले हुए शब्द ध्यानसे सुन रही थी।

इसी समय नौकरने बाबू वल्लभदासके आनेकी सूचना दी।

सुनते ही व्रजेन्द्रनारायणने अपनी कन्याकी ओर देखा। जगदम्बा अनिच्छा दिखाती हुई, वहाँसे उठकर भीतर चली गई।

इसके क्षणभर बाद ही वल्लभदासने कमलेश्वरके साथ उस कमरेमें प्रवेश किया।

वल्लभदासको देखते ही व्रजेन्द्रनारायणने बड़ी आवभगतसे उनको बैठाकर कुशल मँगल पूछा। इसके बाद कमलेश्वरकी ओर देखकर बोले,—"आपको कहीं देखा तो अवश्य है; परन्तु स्मरण नहीं आता, कि कहाँ देखा है?"

वल्लभदासने कहा,—"ये वीरेन्द्रनाथके पुत्र हैं न! आपने शायद नहीं पहचाना।"

छूटते ही व्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"हाँ हाँ, याद आ गया। ये तो मेरे स्वजातीय हैं। आपकी स्त्रीका ही देहान्त लगभग आठ मास हुए हो गया था?"

वल्लभदासने कहा,—"हाँ हाँ, ठीक है, इनकी स्त्रीका ही देहान्त हो गया।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"विचारी बड़ी सुशीला थी, फिर भी तो कहीं इनके विवाहकी बात थी?"

वल्लभदासने कहा,—"नहीं, अभी स्थिर नहीं हुआ है। लड़की बहुत छोटी है। इसी कारणसे इनकी विवाह करनेको इच्छा नहीं होती।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"फिर बड़ी लड़की कैसे मिल सकती है। बारह वर्षके उपरान्त लड़की रखना तो अधर्म्म है।"

वल्लभदासने कहा,—"मुझे तो यह प्रथा सोलहो आने हानिक प्रतीत होती है। इतनी छोटी छोटी लड़कियोंका विवाह कदापि न कर देना चाहिये।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"हाँ, अब तो दिनों दिन समय बदलता जाता है। कुछ दिनमें पन्द्रह बीस वर्षकी लड़कियाँ ब्याही जायेंगीं।"

वल्लभदासने उत्साहसे कहा,—"यही ठीक है। इसके बिना समाजकी उन्नति भी नहीं होगी। बाल्य-विवाहकी प्रथाको तो एकदम जड़से उखाड़ डालना चाहिये।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"जाने दीजिये, इन बातोंको। अभी हमलोगोंको इसमें माथा मारनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो मैं भी मानता ही हूँ, कि धीरे धीरे धर्म्मका ह्रास होता ही जायेगा।"

इसी समय कमलेश्वर वल्लभदास तथा व्रजेन्द्रनारायणको प्रणामकर उठ खड़ा हुआ। व्रजेन्द्रनारायणने पूछा भी,—"क्यों इतनी जल्दी ?"

कमलेश्वरने कहा,—"कुछ आवश्यक कार्य है, फिर दर्शन करूँगा।"

इतना कहकर कमलेश्वर चला गया। उसके जाने बाद वल्लभदासने पूछा,—"आप तो कुशलसे हैं।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"हाँ, सब ईश्वरकी दया है। केवल जगदम्बाको देख देखकर हृदयमें असाधारण कष्ट होता है; परन्तु क्या किया जाये, अपना क्या वश है ?"

वल्लभदासने कहा,—"ईश्वरने न जाने क्यों उसे ऐसा कष्ट दिया। उसकी इच्छा कुछ समझमें नहीं आती ; परन्तु हमलोग भी तो उसका कष्ट दूर करनेका कोई उपाय नहीं करते।"

व्रजेन्द्रनारायणने आश्चर्य्यसे कहा,—"शारदाचरणकी खोजमें हमलोगोंने तो किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं की ; परन्तु कोई पता न लगा। इसके अतिरिक्त यदि वे जीवित रहते तो अवश्य ही पत्र भेजते और घर चले आते।"

वल्लभदासने कहा,—"उनके जीवित रहनेकी तो अब कोई आशा ही नहीं है तथापि जगदम्बाको सुखी करनेका अब भी उपाय है।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"आपकी बात मेरी समझमें नहीं आती।"

वल्लभदासने कहा,—"समझमें आती तो आजतक आप चुप क्यों बैठे रहते। यह बीसवीं शताब्दि है। इस समय इतनी बड़ी लड़कीको इस तरह रखना देश तथा समाज दोनोंके लिये ही हानिकर है। मेरी समझमें तो आप अब उन पुरानी चालोंको छोड़कर नवीन वेशधारण कीजिये। समाजका संस्कार कीजिये। देखिये, हिन्दू जाति दिनों दिन कितनी नीचे गिरती जा रही है।"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"अब समझा। आपका मतलब है, कि उसका दूसरा विवाह करनेकी चेष्टा करूँ।"

वल्लभदासने दबी ज़बानसे कहा,—"मेरी तो ऐसी ही इच्छा है ; परन्तु आप मेरी बात मानिये तब तो।"

ब्रजेन्द्रनारायण उसी तरह साधु-भावसे बोले,—"आपकी बात मानना मेरे सामर्थ्यके बाहर है। मेरा तो यही सिद्धान्त है, कि

"स्वधर्म्मे मरणं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः।"

ऐसी अवस्थामें मैं आपकी बात कैसे मान सकता हूँ।"

वल्लभदास बोले,—"धर्म्म सदा बदला करता है और कलियुगमें तो वह लँगड़ा ही हो गया है, फिर उस लँगड़ेके पीछे आप क्यों अपनी सन्तानको कष्ट दे रहे हैं और उसका दुःख देखकर अपनी आत्माको भी कष्ट पहुँचाते हैं।"

ब्रजेन्द्रनारायण बोले,—"आत्माको क्यों कष्ट पहुँचाता हूँ और आत्मा कष्टित होता है या नहीं, इस बातका मैं आपको क्या उत्तर दूँ; परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है, कि ईश्वरके सब कार्य मँगलका ही स्वरूप है और वह निर्दोषीको कभी दण्ड नहीं देता। यदि किसीको कष्टमें पड़ना पड़ता है, तो इसका कारण उसका कर्म्म है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि जगदम्बा अपने कर्म्मका ही फल भोग रही है। यह दूसरी ही बात है, कि यह कर्म्म उसके इस जन्मका हो अथवा परजन्मका। अब यह कहिये, कि आप दूसरा कौनसा उपाय बताना चाहते हैं?"

वल्लभदासने कहा,—"आपका यह कथन अक्षरशः सत्य है, कि मनुष्यको अपने कर्म्मका फल भोगना पड़ता है; परन्तु हमलोगोंको भी तो उस कर्म्मकी रेखको मिटानेके लिये उद्योग करना चाहिये।"

व्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"कर्म्मकी रेखको मेटनेका सामर्थ्य मुझमें तो नहीं, ईश्वरके हाथोंमें ही है, वही मेट सकता है।"

वल्लभदासने कहा,—"क्यों नहीं, उदाहरण देखिये, राजाराम-की कन्या विधवा हो गई थी—आप तो उसको जानते हैं; परन्तु उसने अपनी कन्याका विवाह एक दूसरे नव-युवकसे कर दिया। देखिये, उनके आगे दो दो सन्तानें हैं और आनन्दसे उनका जीवन व्यतीत हो रहा है।"

व्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"राम! राम! आप भी कैसी बातें कहते हैं। भाई साहब! ऐसी बातें सुननेसे भी पाप लगता है।"

वल्लभदासने कहा,—"पाप पुण्य भी सदा सब स्थानोंमें एक समान नहीं होता। इसकी भी गति बदला करती है। सतयुगमें पाप करनेवालेका ग्रामका ग्राम दोषी हो जाता था, त्रेतामें जाति-की जाति दण्डनीय हो जाती थी, द्वापरमें घरका घर अपराधी होता था; परन्तु कलियुगमें पाप करनेवालेको ही अपराधी कहा है, सोभी मानसिक पापका दण्ड नहीं होता। बताइये, फिर पाप पुण्य क्या चीज रह गई? पाप और पुण्यके मध्यमें भी तो कोई पदार्थ है। मान लीजिये, कि आप नित्य सन्ध्या करते हैं—आपका धर्म्म है नित्य सन्ध्या करना, तो क्या आप नित्य पुण्य करते हैं। नहीं, आपका जो नैमित्तिक कर्त्तव्य है, उससे जब अधिक आप करेंगे, तब वह पुण्य होगा। गीतामें नारायणने कहा है, कि जिससे ईश्वरकी सृष्टि बिना बाधाके चलती रहे, उसीका नाम धर्म्म है, बताइये, फिर जिसे आप सुननेमें भी पाप बताते

हैं, उससे तो ईश्वरकी सृष्टि बढ़ती है, फिर वह पाप कैसे हुआ ?"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"धर्म्मकी बड़ी सूक्ष्म गति है। यह निर्णय करना, कि क्या धर्म्म और क्या अधर्म्म है, बड़ा ही कठिन है। तथापि मेरी तो यही धारणा है, कि अपने कुल और समाज-की चालका यथा नियम परिपालन करना ही धर्म्म है और उसीसे सभी सांसारिक कार्य भी सुचारु रूपसे सम्पादन होते हैं और जहांतक सम्भव है, उसीका पालन भी करता हूँ।"

वल्लभदासने कहा,—"यदि थोड़ी देरके लिये आपकी बात मान भी ली जाये तो भी आपको यह मानना ही पड़ेगा, कि स्मृतियाँ भी कालके अनुसार सदा बदला करती है। इसी लिये "कलौ पाराशरस्मृताः"का वचन भी तो मिलता है। अब आप ही बताइये, कि क्या मनु और पराशरकी सब बातें माननेके लिये आप तय्यार हैं। क्या मनु-पराशरके सिद्धान्तके अनुसार सब कार्य आप करनेको तय्यार हैं और करते हैं। यदि नहीं करते हैं, तो यह कहिये, कि देश, काल तथा पारिपार्श्विक घटनाओं तथा विदेशियोंके संघर्षने आपको वाध्य किया है, कि आप उन नियमोंको न पालन कर सकें और इसी लिये आप सम्भवतः इच्छा रहते हुए भी उन्हें पालन नहीं कर सकते। देखिये, स्मृतियोंमें तो कहा है, कि यदि स्त्रीको पति क्लीव दिखाई दे तो उसे त्यागकर दूसरा पति कर सकती है। जिस तरह आप उनकी यह बात नहीं मानते, उसी तरह यह भी माननेके लिये क्यों

तय्यार नहीं होते, कि स्त्रीका पति मर जानेपर सृष्टिकी उन्नतिके लिये उसका दूसरा विवाह कर देना भी अनुचित नहीं है।"

बाबू व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"मनु और पराशर तथा समस्त स्मृतियाँ समझनेकी मुझमें शक्ति नहीं; परन्तु मैं केवल एक ही बात जानता हूँ और उसे ही सत्य मानता हूँ अर्थात आजतक जो धर्म्म और जिस कुलकी चालको मानता आया हूँ, उसे त्यागना अधर्म्म और पाप समझता हूँ। दूसरे ईश्वरी महिमापर मेरा अटल विश्वास है, उसके कार्यमें मैं छेड़ छाड़ नहीं किया चाहता।"

वल्लभदासने कहा,—देखिये, ईश्वरने पृथ्वी बना दी, घास वृक्ष बना दिये; परन्तु ये वृहत् अट्टालिकायें तथा नाना प्रकारके सुन्दर गृह, वस्त्र आभूषण आदि जो दिखाई दे रहे हैं, वे तो मानवी बुद्धिके ही उज्वल आदर्श हैं। इस अवस्थामें आप भी तो यह समझिये, कि ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि और विवेक इसी लिये दिया है, कि वे उसका उपयोग करें। क्या आप अपनी बुद्धि और विचारसे यह निर्णय नहीं कर सकते, कि एक बालिकाको सदा कष्टमें रखकर सृष्टिकी उन्नतिमें बाधा डालनेकी अपेक्षा उसको सुखी करना और संसारकी उन्नति करना श्रेयस्कर है?"

व्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"देखिये, सब मनुष्य एक प्रकारसे सुखी नहीं होते? किसीको पुण्य कार्य करते हुए अपने शरीरको सुखा डालनेमें ही सुख प्राप्त होता है और किसीको पाप-पङ्कमें

डूबकर दिन रात अपनी विलास-वासना चरितार्थ करनेमें ही सुख प्राप्त होता। सुख अपनी रुचिपर निर्भर करता है। अतः यह कैसे मान लिया जाये, कि पतिके परलोकगमनके बाद दूसरा विवाह कर ही स्त्री सुखी हो सकती हैं। यह मान सकता हूं कि कितनी ही स्त्रियोंको उसमें सुखका आभास मालूम होगा; परन्तु कितनी ही ऐसी भी निकलेंगी जो अपने पतिके नामकी ही माला जपती हुई उस प्रेमको परमेश्वरमें लीनकर सांसारिक सुख दुःखोंको तुच्छ समझती हुई, अपना जीवन एकनिष्ठा और सत्य पातिव्रतमें व्यतीत कर देनेमें ही अपनेको परम सुखी समझेंगी। अब रही सृष्टिकी वृद्धिकी बात। सो भाई साहब! सृष्टिकी उन्नति और संहारका अधिकार भी परमात्माके ही हाथोंमें है। आप विधवाओंका विवाहकर सृष्टिकी वृद्धि कीजिये और परमात्माकी इच्छा यदि नहीं है, तो प्लेग और इंफ्लुएञ्जामें लाखों मनुष्य एक ही वर्षमें स्वाहा हो जायँगे।"

इतना कहते व्रजेन्द्रनारायणकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने आँखें पोंछकर गद्गद स्वरमें कहा,—"भाई साहब! उस मायामयकी अपार लीला है? वह किस उद्देश्यसे क्या करता है, सो कौन समझता है? हमलोग कितना ही विचारते, कितना ही सर मारते हैं; परन्तु क्या कोई फल होता है?"

वल्लभदासने कहा,—"आपकी भगवद्भक्ति निःसन्देह प्रशंसनीय है; परन्तु देखिये, जरा विचार करनेसे ही मालूम होगा, कि मेरा कथन सत्य है। जिन शास्त्रकारोंके मतको मानकर आप विधवा

विवाहको दूषित समझते हैं, वे ही शास्त्रकार कह रहे हैं, कि स्त्रियोंको पुरुषोंसे अष्ट गुण काम अधिक रहता है, बताइये उन्हें कितना कष्ट सहन करना पड़ता है। साथ ही वे व्यभिचारिणी न हो जायें; इसलिये उनको धार्म्मिक रूपसे एकके साथ कर देना ही अच्छा है न ?"

इस बार ब्रजेन्द्रनारायण कुछ उत्तेजित हो उठे। बोले,—"आप क्या स्त्रियोंको गुड़ियोंका खेल समझते हैं। हमारे शास्त्रकारोंने स्त्रियोंको जो महत्व दिया है, वह महत्व क्या साधारण है ? वे क्या सहज ही व्यभिचारिणी हो जाती हैं ? उनको कुपथगामिनी बनानेवाले भी पुरुष ही होते हैं। स्त्रियोंके महत्वको नष्ट करने-का उद्योग नहीं कीजिये। यदि उनमें काम अष्टगुण है तो लज्जा और भी कई गुण अधिक है। लज्जा उन्हें जगदम्बाके रूपमें कुपथगामिनी बननेसे रक्षा करती है। वे सहज ही व्यभिचारिणी नहीं होतीं। आप कहेंगे, कि इस समय धर्म्मका ह्रास हानेके कारण वे स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी भाँति लम्पट हो गई हैं। मान लीजिये, कि बहुतसी स्त्रियाँ नष्ट हो गईं; परन्तु यदि एक सती रह गई तो वही आदर्श मानी जायगी। उसीकी पूजा होगी। वल्लभदासजी! भारतीय स्त्री-समाजका मस्तक समस्त देशोंसे इसी लिये उन्नत है, कि यहाँका स्त्री-समाज पातिव्रत बलके आगे समस्त संसारका माथा झुका देता स्त्रियोंके इस महत्वको नष्ट करना कदापि उचित नहीं है। अ भी विचार कीजिये, मान लीजिये, कि एक स्त्रीने अपके पतिके

मरनेपर दूसरा विवाह किया। दैव-इच्छासे यदि वह भी मर गर्य तो तीसरा किया, बताइये इस तरह उसके वार वनिता वननें क्या वाकी रह गया ?

और भी सोचिये। एक स्त्रीको एक पुत्र है, पतिके मरनेपर उसं दूसरा विवाह किया, उससे भी पुत्र हुआ। अब बताइये, पि पितृ-कर्म्मका अधिकारी कौन होगा ? और भी सोचिये, जिस समय आप हिन्दू-समाजमें यह चाल चला देंगे ; उस समय स्त्री जातिका क्या महत्व रह जायेगा और क्या आपका स्त्री-समाज उसी गौरवसे गरीयमान रहेगा, जो उसे आज प्राप्त है। भाई साहब ! क्षमा कीजिये। विधवाओंको आदर्श बनानेकी चेष्ट कीजिये। सृष्टिकी वृद्धिके लिये अनेकानेक सधवायें हैं। अब भी सधवाओंकी संख्या ही अधिक है। यह प्रथा न प्रचलित रहनेपर भी भारतकी मनुष्य संख्या दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है।"

बाबू ब्रजेन्द्रनारायण बहुत तेज़ीसे ये बातें कह गये। बाबू वल्लभदास उनको बातें सुनकर कुछ अप्रतिमसे होकर बोले,—"मैं मायेस्त्री समाजके लाभ और आपके भलेके लिये ही ये बातें कहता है, सो

ही सरजेन्द्रनारायणने कहा,—"मेरे भलेके लिये। तो आप यह रह करते हैं, कि जगदम्बा अपने पातिव्रतकी रक्षा न कर है ; गी ?"……इतना कहते कहते ब्रजेन्द्रनारायण कुछ घबड़ासे गये। कुछ ठहरकर बोले,—"जो होना होगा, सो होगा मैं

ऐसी अपमानजनक धर्म्म विरुद्ध बातपर तर्क भी नहीं करना चाहता।"

बाबू वल्लभदास मन ही मन कुछ रञ्ज हुए। वे कुछ उत्तर दिया ही चाहते थे, कि इतनेमें ही एक मनुष्य दौड़ता हुआ, वहाँ आ पहुँचा और बोला,—"जल्दी घर चलिये। हरनारायण बाबूकी तबियत बहुत खराब हो गई है।"

लाचार वल्लभदास उसी समय उठकर चले गये। बाबू व्रजेन्द्रनारायण भी "शिव, शिव" कहते हुए उठ खड़े हुए।

—



चौथा परिच्छेद ।

——(*)——

भाई भाई ।

संध्याका समय था। बाबू ब्रजेन्द्रनारायण अपने नि॰ कृत्यासे निश्चिन्त होकर, बाहर आनेकी तय्यारियाँ कर ही रहे थे कि इतनेमें ही लीलावतीकी सासने उनके निकट जाकर कहा,— "देखो, मुझे बहू बेटियोंके ये लक्षण पसन्द नहीं हैं। दिनरा॰ पढ़ना, दिनरात कलम कागज़ ; भला मैं क्या घरकी मज्दूरि॰ हूँ, जो दिनरात खटा करूँ और बहूएँ सब बैठकर आनन्द करें। अब वह अपने साथ ही साथ छोटी बहूको भी चौपट क॰ रही है।"

ब्रजेन्द्र-नारायणने एक बार इधर उधर देखा। जब उन्हें उनकी बात सुननेवाला कोई भी दिखाई न दिया, तब बोले,—"देखो नित्य प्रति किसीपर क्रोधित होने अथवा बिगड़ते रहनेसे फिर वह यही समझ लेता है, कि कहनेवालेकी प्रकृति ही ऐसी है और क्रोध दिखानेका कोई फल भी नहीं होता। अतः किसीपर नित्यप्रति क्रोध न प्रकाश करना........."

बीचमें ही प्रियम्वदा बोल उठी,—"वाह ! सदा मुझेही कहा करते हो, उसको भी तो कुछ समझाया करो।"

ब्रजेन्द्रनारायण बोले,—"तुम्हारा कथन ठीक है, परन्तु कहूँ कैसे ? उसका कोई अपराध तो देखता नहीं। अपराधमें उसक॰

पढ़ना, लिखना है, सो तुम्हारे घरका कोई काम हर्जकर तो वह पढ़ती नहीं।"

प्रियम्वदाने कहा,—"परन्तु इससे लाभ क्या है? उसे कहीं नौकरी करने जाना है?"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"बाहर नहीं तो घरकी तो नौकरी करनी है। अपने बाल-बच्चोंको अनपढ़ तो नहीं रहने देगी, लड़कोंको पढ़ाने लिखानेमें जितने रुपये तुम्हें खर्च करने पड़े; उतने उसे तो न खर्च करने पड़ेंगे। एक बात और भी है, देखो बच्चोंका अधिक समय अपनी माताके पास ही व्यतीत होता है, अतः यदि माता पढ़ी लिखी हुई तो उसकी सन्तान शीघ्रही कुछ पढ़-लिख जाती है। इससे यदि बड़ी बहू पढ़ती लिखती है, तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है; परन्तु इतनी बातपर अवश्य ध्यान रखना चाहिये, कि स्त्रियोंके हाथमें ऐसी पुस्तकें न पड़ें जिससे उनकी रुचि खराब ओर झुक जाये।"

प्रियम्वदाने कहा,—"परन्तु यह देखे कौन?"

व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"या तो पुस्तकें उसके पिताके यहांसे आती हैं या रघुनन्दन भेजता है, सो मुझे विश्वास है, कि इन दोनोंमेंसे कोई भी उसे ऐसी पुस्तकें न देता होगा, जिससे उसकी रुचि बिगड़े।"

प्रियम्वदा झिझककर बोली,—"हाँ हाँ, तुमलोग सभी मुझे ही मूरख बनाते हो। जाने दो, आजसे मैं इस बीचमें पड़ूँगी ही नहीं।"

ब्रजेन्द्रनारायण हंस पड़े, कुछ क्षण बाद बोले,—"कुछ दिनों बाद आप ही समझ जावोगी, कि मेरा कथन कहाँतक सत्य है। दे

अभी इन दोनोंकी बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय बाहरसे किसीके बोलनेका शब्द सुन पड़ा और ऐसा मालूम हुआ मानो रघुनन्दन बोल रहा है।

तुरन्तही बाबू ब्रजेन्द्रनारायण बाहर निकल आये। वास्तवमें रघुनन्दनही आया था।

पिताको देखकर रघुनन्दनने चरण छूकर प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर ब्रजेन्द्रनारायणने पूछा,—"क्यों बहुत जल्दी आ गये।"

रघुनन्दनने नम्र स्वरमें कहा,—"गरमीकी छुट्टी हो गई, इस लिये चला आया।"

ब्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"और तो सब कुशल है।"

रघुनन्दन बोला,—"हाँ, आपके आशीर्वादसे सब कुशल है।"

ब्रजेन्द्रनारायण बोले,—"अच्छा जाओ, हाथ मुंह धोकर निश्चिन्त हो। पीछे बातें करूंगा।"

रघुनन्दन ऊपर चला गया। रात्रिके नौ बज गये थे। रघुनन्दन अपने कमरेमें बैठा हुआ था। कभी वह सामनेके छोटेसे टेबलपर रखी हुई किताबें उठाकर देखता और फिर उसे ज्योंकी त्यों सजा कर रख देता था, कभी पेन्सिल उठाकर देखता और फिर उसे यथास्थान ठीक ठीक रख देता था; फिर किसी कागज़पर लिखी हुई, किसी कविताकी कोई अधूरी पंक्ति अथवा पूरी पंक्ति पढ़ता

और फिर उस कागज़को वन्दकर ठीक स्थानपर ज्योंका त्यों रख देता था। इसी तरह करते हुए उसे लगभग एक घण्टाके बीत गया। अब उसने एकबार झांककर खिड़कीसे नीचेकी ओर देखा और फिर तुरन्त ही लौटकर अपने स्थानपर बैठ गया।

अभी उसे बैठे हुए कुछ ही क्षण बीते थे, कि इसी समय एक रमणीने घूंघट डाले हुए, उस कमरेमें प्रवेश किया। भीतर आकर उस रमणीने घूंघट उलट दिया। सजाया हुआ कमरा उस रमणीकी उज्वल रूप-राशिसे और भी चमक उठा। रघुनन्दनने अतृप्त नयनोंसे उसके उज्वल मुखकी ओर देखा। दोनोंकी आँखें चार हुई। उस रमणीकी आँखें तुरन्त ही लज्जासे झुक गई।

इसके बाद ही रघुनन्दनने कहा,—"मालूम होता है, कि आज मैं आया हूँ; इसी लिये तुम्हें यहाँ आनेमें इतना विलम्ब हुआ।"

रमणी मुस्कराकर बोली,—"इस बार बहुत दिन लगा भी तो दिये?"

रघुनन्दनने कहा,—"उसीका यह दण्ड दिया, कि इतनी देर-तक राह देखनी पड़ी।"

लीलावती बोली,—"मैं दण्ड दूँगी? ऐसी बात सुननेसे भी पाप लगता है।"

रघुनन्दन बोला,—"तुमलोगोंका पाप-पुण्य क्या है, यह तो ईश्वर ही जाने; परन्तु यह तो बताओ, कि आज इतनी देर क्यों हुई?"

लीलावतीने मुस्कराकर कहा,—“उत्कण्ठामें थोड़ा समय
अधिक ही मालूम होता है। अभी कितने बजे हैं ?”

रघुनन्दनने घूमकर घड़ीकी ओर देखा। ठीक साढ़े
बजे थे।

लीलावतीने फिर कहा,—“नीचे सब भोजन कर रहे थे,
चली आती ? परन्तु आप दुर्बल क्यों दिखाई दे रहे हैं ?”

रघुनन्दनने हंसकर कहा,—“तुम्हें तो मैं सदा दुर्बल ही दिखा
देता रहता हूँ, परन्तु अपना हाल तो बताओ।”

लीलावती बोली,—“मैं तो अच्छी हूँ।”

अभी उन दोनोंमें बातें हो ही रही थीं कि इसी समय शि
नन्दनकी आवाज सुन पड़ी। रघुनन्दनने कहा,—“मालूम हो
है, कि शिव आया है।”

लीलावती बोली,—“हाँ, आवाज़ तो उनकी ही मालूम हो
है।”

रघुनन्दनने स्वयं खिड़कीके पास जाकर शिवनन्दनको पुकार
शिवनन्दनने ऊपर जाकर भ्राताको प्रणाम किया। रघुनन्दनने
प्रेमसे कुशल प्रश्न करनेके बाद पूछा,—“तुम अबतक कहाँ थे
आज तुम्हें यहाँ आनेमें बड़ा विलम्ब हुआ ?”

शिवनन्दनका यह अभ्यास था, कि वह रातके दस, ग्यारह
तक इष्ट-मित्रोंके साथ बैठकर ताश खेलता या इधर उधर घू
करता था। यही कारण था, कि वह प्रवेशिका परीक्षामें सफ
न हो सका था। अतः वह अपने ज्येष्ठ भ्राताका प्रश्न सुन

उत्तर न दे सका। उसका शीघ्र उत्तर न देना ही प्रमाणित करता था, कि वह कुछ ऐसे कार्यों में लगा था, जिसे अपने बड़ोंसे छिपानेकी आवश्यकता थी। कुछ देरतक तो वह चुप बैठा रहा, इसके बाद जब फिर रघुनन्दनने पूछा तो बोला,—"कमलेश्वरके यहाँ बैठा था, वहीं बातोंमें देर हो गई?"

रघुनन्दनने कहा,—"कौन कमलेश्वर?"

शिवनन्दन बोला,—"बाबू वीरेन्द्रनाथके पुत्र!"

रघुनन्दनने कहा,—"वे तो अपनी जातिके ही हैं, तथा बड़े धनवान हैं, तुम्हारा उनका साथ कैसे हुआ? वैर और प्रीति तो समान मनुष्योंसे होनी चाहिये।"

शिवनन्दन बोला,—"हाँ, आपका कथन तो सत्य है। परन्तु इधर कई माससे उनसे मेरा स्नेह हो गया है और इसी कारणसे उनके यहाँ कभी कभी चला जाता हूँ।"

रघुनन्दनने कहा,—"ठीक है; परन्तु विचार करनेकी बात तो यह है, कि इसमें हानि किसकी है? भाई! वे धनी पुरुष ठहरे, उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया, तब भी उनकी कोई विशेष हानि न हुई; क्योंकि पासमें धन खूब है। इस बातकी चिन्ता तो है नहीं, कि उदर पूर्त्ति कैसे होगी? परन्तु तुम्हारा यह अमूल्य समय जो नष्ट हो रहा है, उसकी पूर्त्ति क्या कभी हो सकती है? दूसरे मेले-तमाशेमें तुम उनके साथ जाते ही होगे। मित्रका दर्जा बराबरीका होता है, उनकी संगतिमें तुम्हारा धन भी अवश्य ही अधिक व्यय होता होगा। मान लो, कि नहीं हुआ, तो तुम

उनके एहसानोंसे नित्य प्रति दवे जाते होगे? ऐसी अवस्
यदि किसी समय वे किसी उचित अथवा अनुचित कार्यके
ही तुम्हें वाध्य करें, तो तुम भी उसे करनेके लिये वाध्य हो
मान लो, कि तुम किसी कारणसे भी वह कार्य न कर सके
तुम्हारा उनका वैमनस्य होगा। यह तो ठीक नहीं, अच्छा अब
बताओ, कि तीन माससे अधिककी तुम्हारी उनकी प्रीति
इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ?"

शिवनन्दन अपने भ्राताके स्वभावसे भली भांति परिचित था
वह अच्छी तरह जानता था, कि रघुनन्दन कभी क्रोधकर
बोलता। उसकी बातें इसी ढङ्गकी होती हैं, परन्तु उसके हृदयमें
कष्ट होता है, तभी वह इस ढङ्गकी बातें कहता है। अतः एकाएक
उसके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हो गया, कि मालूम होता है,
भावजने मेरी कुछ निन्दा की है। अतः उसने एकबार रुष्ट भाव
अपनी भावजकी ओर देखा, परन्तु उसके मुखपर वही सरल
विराज रही थी। अतः उसने धीरेसे कहा,—"अभीतक
तो कुछ भी नहीं हुआ?"

रघुनन्दनने कहा,—"और हानि?"

शिवनन्दनने इस बार कुछ जोरसे कहा,—"हानि भी
कुछ भी नहीं हुई।"

रघुनन्दन,—"ईश्वर करे तुम्हारी कोई हानि न हो। पर
मुझे तो मालूम होता है, कि तुम्हारी कुछ हानि अवश्य हुई
सबसे बड़ी हानि तो यह है, कि तुम्हारा यह समय

निरन्तर पठन-पाठनमें लगना चाहिये था, खेल-तमाशे, शतरंज, चौपड़में नष्ट हो रहा है। यदि केवल इतनी ही बात होती, तो मैं समझ लेता, कि कुछ नहीं हुआ, परन्तु इन खेलोंके कारण मनुष्यकी बुद्धिका भी ह्रास होता है। कभी कभी ये व्यसन गहरी बुराइयाँ उत्पन्न कर देते हैं। एक बात तो इतने ही दिनोंमें मालूम होती है। जैसे वस्त्र तुम पहले पहनते थे, जितनी सादगी पहले तुममें दिखाई देती थी, अब उतनी नहीं है। इससे प्रमाणित होता है, कि तुम्हारा खर्च कुछ बढ़ गया है और उनकी संगतिका यह परिणाम अवश्य हुआ है। अच्छा, अब तुम जवान हुए, मेरी बातोंपर ध्यान रखना। जो समय बीत जाता है, वह फिर नहीं आता। अच्छा, जाओ सो रहो।"

शिवनन्दन उठ खड़ा हुआ। परन्तु फिर भी उसने एक बार लीलावतीके चेहरेकी ओर घूमकर देखा। मालूम होता था, कि अभी उसकी यह धारणा दूर न हुई थी, कि उसकी भावजने ही उसकी शिकायत की है।

उसके चले जानेपर रघुनन्दनने कहा,—"शिवनन्दनके लक्षण अच्छे नहीं मालूम होते।"

लीलावती बोली,—"यह कुसमयका उपदेश अच्छा नहीं हुआ। वे समझेंगे, कि मैंने ही शिकायत की है?

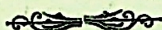
रघुनन्दनने कहा,—"बात तो ठीक है और मैं कुछ कहता भी नहीं; परन्तु उसके रङ्ग ढङ्ग अच्छे नहीं मालूम हुए; इसीलिये कहना पड़ा। परन्तु तुमने तो कोई शिकायत की नहीं, इसलिये

तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपना कर्त्तव्य प करो। फलाफल तो ईश्वरके आधीन है।"

लीलावतीने कोई उत्तर न दिया। इसी समय घड़िया रातके दस बजा दिये और रघुनन्दन चारपाईपर जा लेटा।



छठाँ परिच्छेद ।



कार्यारम्भ ।

वल्लभदासको इस बातका बड़ा अभिमान था, कि उनकी प्रबल युक्तियाँ, अकाट्य बातें तथा असाधारण तर्क-शक्तिके सम्मुख किसीकी ताब नहीं जो अपने सिद्धान्तपर ठहर सके। इसीसे वे बड़े अभिमानसे शुभस्य शीघ्रम् कहते हुए बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके पास जा पहुँचे थे और उन्हें पूरी आशा थी, कि कमलेश्वरका मनमोहक सौन्दर्य तथा अतुलनीय धनराशिकी बात सुन तथा अपनी कन्याकी भविष्य सुख-लालसाके फेरमें पड़कर बाबू ब्रजेन्द्रनारायण सहज ही उनकी बातें मान लेंगे और जगदम्बाके पुनर्विवाहके लिये राजी हो जायँगे ; परन्तु वहाँ जाकर और ब्रजेन्द्रनारायणसे बातें कर उनकी सब आशा मिट्टीमें मिल गई और वे एक प्रकारसे निराशसे हो गये। अस्तु, अपनी असफलतापर वे झुंझलाते हुए जिस समय अपने घरकी ओर कुछ ही पद अग्रसर हुए थे, कि एक पतली गलीसे निकलकर कमलेश्वर उनके सामने आ खड़ा हुआ ।

कमलेश्वरको एकाएक अपने पास देखकर वल्लभदासने पूछा, —"क्यों, तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?"

कमलेश्वर,—"यद्यपि आपने मुझे चले जानेकी आज्ञा दी थी ; परन्तु मेरे हृदयमें जो उथल-पुथल मची हुई थी, उससे मैं वहाँसे तो उठ आया ; परन्तु छिपकर आप दोनोंकी बातें सुनता रहा ।"

वल्लभदासने कहा,—"यद्यपि कुतुहलवश तुमने छिपक वातें सुनी हैं; परन्तु छिपकर किसी दो मनुष्यमें होती हुई सुनना अच्छा नहीं है।"

कमलेश्वरने कहा,—"अच्छा, क्षमा कीजिये। हरनारायण तवियत खराब नहीं है। मैंने बात बढ़ जानेके भयसे ही आप बुलवा भेजा था।"

वल्लभदास बोले,—"यह भी तुमने अच्छा नहीं कि झूठ किसी अवस्थामें भी अच्छा नहीं और बात बढ़ जानेका भय था? हमलोग जब किसी विषयपर विचार करते हैं, योंही वातें होती हैं। इसमें बात बढ़ जानेका कोई कारण नहीं

कमलेश्वरने कहा,—"खैर, जो हुआ सो तो हो ही गय परन्तु ब्रजेन्द्रनारायण तो किसी तरह राजी होते नहीं दिखाई दे अब उपाय?"

वल्लभदासने कहा,—"उपाय, तो अभी बहुतसे बाकी हैं, इस तरह हताश क्यों होते हो? अब सबके पहले इस बातके जा का उद्योग होना चाहिये, कि जगदम्बाका चरित्र कैसा है, उस अन्य पुरुषोंके साथ व्यवहार कैसा है, उससे घरवालोंकी पटती या नहीं? इन सब बातोंका पता लगा लेने बाद और कुछ उ करना होगा। हाँ, तुमसे और शिवनन्दनसे तो बड़ी घनि है। यदि तुम उसे किसी तरह अपने मतमें ला सको तो उ हो और जो बातें मैं कह गया हूँ, उन सभी बातोंका पता लग जाये।"

कमलेश्वरने कहा,—"यह तो कोई कठिन नहीं है। मैं शीघ्र ही इन बातोंका शिवनन्दनसे पता लगा लूँगा।"

वल्लभदास बोले,—"ठीक है। एक बार उसको मेरे पास ले आना। मैं भी उसे अच्छी तरह समझा दूँगा।"

अभी इन दोनोंमें इस ढङ्गकी बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय शिवनन्दन भी अपने घरसे आता हुआ दिखाई दिया।

शिवनन्दनको देखते ही कमलेश्वर बोल उठा,—"देखिये, शिवनन्दन तो आ रहे हैं।"

वल्लभदासने भी घूमकर देखा। उसी समय शिवनन्दनने उनके पास आकर प्रणाम किया।

वल्लभदासने बड़े प्रेमसे उसकी पीठपर हाथ फेरकर कहा,— "चिरजीवी रहो! कहो, अच्छे तो हो?"

शिवनन्दनने कहा,—"आपके आशीर्वादसे सब आनन्द है।"

वल्लभदासने कमलेश्वरकी ओर देखकर कहा,—"तुमलोग पढ़े लिखे मनुष्य हो। इस समय तुम लोगोंको उचित है, कि कुछ देश और समाजके काममें भाग लिया करो। इस तरह अकर्मण्यसे क्यों बैठे हो?"

कमलेश्वरने कहा,—"मैं सब तरहसे आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये तय्यार हूँ।"

वल्लभदासने कहा,—"इस तरह राहमें खड़े होकर बातें करना अच्छा नहीं, चलो घरपर चलें।"

इसके बाद सब वल्लभदासकी बैठकमें जा पहुँचे। कुछ देरतक

इधर उधरकी बातें होती रहीं। इसके बाद वल्लभदासने भारत वासियोंकी वर्त्तमान अवस्थाको समझाना आरम्भ किया फिर स्त्रियोंकी बारी आई। उनके सम्बन्धमें भी वल्लभदास दोनोंको अच्छी तरह समझाते हुए कहा,—"अब भारतवासियों चाहिये, कि पुरानी लकीरके फकीर न बने रहें और समाज संस्कार कर देशकी उन्नति करें।"

शिवनन्दनने कहा,—"आपका कथन अक्षरशः सत्य है इस तरह तो हमलोग दिनों दिन अधःपतनकी ओर अग्रसर हो जाते हैं।"

वल्लभदासने कहा,—"इसीलिये तो कहता हूँ, कि अब मारकर बैठनेका समय नहीं, बल्कि ऐसा उद्योग करनेका जिसे समाज दिनों दिन अग्रसर हो।"

शिवनन्दन बोला,—"मैं तय्यार हूँ।"

वल्लभदासने कहा,—"पहली और सबसे जरूरी बात तो है, कि मनुष्यको बहुत सोच विचार कर अपना लक्ष्य ठीक लेना चाहिये। जब लक्ष्य स्थिर हो जाता है, तब कार्य्य-पथ सुग मालूम होता है। इससे तुम लोगोंको पहले इस बातपर विचा करना चाहिये, कि तुम भारतको प्राचीन भारत बनाया चाहते हो अथवा इस योग्य उसे बनाया चाहते हो, कि विदेशियोंके संघर्ष वह नाश न हो जाये? और न अन्य देशोंकी अपेक्षा वह किसी अवस्थामें कम ठहरे।"

शिवनन्दन वल्लभदासको चाचा कहकर सम्बोधन करता था

क्योंकि उसके पितासे वल्लभदासकी विशेष घनिष्टता थी। वह बोला,—"नहीं चाचाजी! नाश कैसे होने दूँगा। हमलोगोंको इस बातकी चेष्टा करनी पड़ेगी, कि विदेशियोंके संघर्षमें हमलोग कमजोर न पड़ जायें।"

वल्लभदासने आश्चर्यसे शिवनन्दनके चेहरेकी ओर देखकर कहा,—"तुम्हारे इस कथनका क्या तात्पर्य्य है?"

शिवनन्दन बोला,—"चाचाजी! मेरे कथनका यह तात्पर्य्य है, कि हमारे धर्म्मके असली तत्वको तो लोग समझते नहीं, समय और घटनाओंके प्रभावसे उसमें जहाँ कहीं थोड़ा भी छिद्र दिखाई दिया तो उसी छिद्रको लोग वृथाकी बकवादकर और भी बढ़ा देना चाहते हैं। अतः हमलोगोंको इस बातका उद्योग करना पड़ेगा, कि वह छिद्र इस तरह बन्द कर दिया जाये, कि फिर किसीको कुछ कहनेका अवसर ही प्राप्त न हो और हमारे समाजमें जो कुछ विश्रृङ्खलता आ गई है, वह दूर हो जाये।"

वल्लभदासने कहा,—"यह क्या, सारी रामायण हो गई, सीता किसकी जोय। हम इतना कह गये; परन्तु तुम कुछ समझे ही नहीं। तब क्या तुम इस भारतको प्राचीन भारत ही बनाया चाहते हो? क्या तुम्हारी यही इच्छा है, कि यह भारत वैसा ही बुड्ढा, जीर्ण शीर्ण बना रहे। क्या तुम भारतीय महिला-समाजको सदा दासी-वृत्ति करते ही देखना चाहते हो? क्या तुम यही उचित समझते हो, कि विदेशवाले आनन्द मनायें, धन-जनसे सम्पन्न दिखाई दें, वहांका स्त्री-समाज अपने अध्यवसायबलसे

उन्नतसे उन्नतपदका अधिकारी हो। राजनीति तथा समाजनीति में अग्रणी दिखाई दें और भारतीय स्त्रियाँ सदा पराधीन रह दुःखिनोकी भाँति अपने दिवस बिताया करें। दिन-रात मज़दूरी किया करें, पति मर जाये तो उसके नामकी माला जपती, का दिन काटा करें और दूसरोंकी तावेदारी किया करें तथा उन झिड़कियाँ सुना करें।"

वल्लभदासके मुँहसे निकले हुए इस अन्तिम वाक्यने शिवनन्दनका कलेजा हिला दिया। जगदम्बाकी अवस्था वह नित्य प्रति अपनी आँखों देखता था, वह अच्छी तरह समझता था, कि जगदम्बा किस तरह अपने कष्टको मन ही मन दबाकर दूसरोंको सुखी रखनेकी चेष्टा किया करती है। किस तरह लीलावती बारम्बार मना करनेपर भी वह गृहस्थीका झमेला अधिकांश अपने माथे उठाये रहती है। किस तरह सदा इस बातपर ध्यान रखती है, कि कोई उसके व्यवहारसे अप्रसन्न न हो, किसीको वह भा स्वरूप न मालूम हो। वह मन ही मन विचारने लगा,—"इसमें तो कोई सन्देह नहीं, कि विदेशको रमणियाँ भारतीय रमणियोंसे कहीं सुखी तथा सम्पन्न हैं। क्या कारण है, कि भारतीय स्त्रियाँ उनका सामना नहीं कर सकतीं और..........."

शिवनन्दन इसी तरह सोचता हुआ, अपने ध्यानमें ऐसा लीन हो गया, कि वल्लभदासकी बातोंका कुछ उत्तर न दे सका। उधर वल्लभदासने सोचा, कि उनके माया-मन्त्रने अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया है। साथ ही "मौनं सम्मति लक्षणं

समझकर वे बड़े उत्साहसे बोले,—"क्यों शिवनन्दन! किस विचारमें पड़े गये? देखो, ज़रा मेरी बातोंपर विचार करो, मैं ज़माना देखता देखता बुड्ढा हो चला। मैं निरर्थक कुछ नहीं कहता।"

इतना कहकर वल्लभदासने एक बार कमलेश्वरकी ओर देखा। कमलेश्वर उनको अपनी ओर देखते देखकर मुस्करा दिया; परन्तु शिवनन्दनने वल्लभदासकी ओर एक बार आँखें उठाकर देखा और फिर माथा झुका लिया।

इस समय उसका चेहरा देखनेसे ही मालूम होता था, कि उसके हृदयमें किसी चिन्ताने भयानक हलचल मचा दी है, उसी चिन्ता-सागरकी तरङ्गोंके आघात प्रतिघातसे उसका हृदय-कमल इस प्रकार हिल रहा है, कि उसका बाह्य ज्ञान एक प्रकारसे विलुप्त हो रहा था। इसी लिये वल्लभदासकी बातोंका वह कोई उत्तर न दे सका।

वह कुछ देरतक इसी तरह निस्तब्ध भावसे बैठा रहा। इसके बाद उसे कोई उत्तर देते न देखकर वल्लभदासने और भी ज़ोरसे कहा,—"क्यों शिवनन्दन! तुम कुछ उत्तर नहीं देते? क्या मेरी बातें नहीं सुनीं?"

इस बार शिवनन्दन चौंक उठा। बोला,—चाचाजी! आपकी बातोंने मेरे हृदयमें बड़ी हलचल मचा दी है। मैं सोच रहा था, कि आपको क्या उत्तर दूँ।"

वल्लभदासने एक बार तिरछी दृष्टिसे कमलेश्वरकी ओर

देखकर कहा,—"देखा, जब काम करनेका समय आया, तब तुम्हारे मित्र बगले झाँकने लगे।"

कमलेश्वरने कहा,—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

इसी बीच शिवनन्दन बोल उठा,—"ऐसा न समझिये, मैं काममें भय खाता हूँ। मैं इस बातसे डरता हूँ, कि काममें पड़कर अन्तमें सिवा बदनामीके और कुछ हाथ आयगा।"

वल्लभदासने कहा,—"तुम्हारे जैसे पढ़े लिखे मनुष्योंके मु से यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य्य होता है। तुम समाजमें रीति चलाया चाहते हो. समाजमें एक परिवर्त्तन उपस्थित क चाहते हो, एक प्रकारका विद्रोह मचाना चाहते हो, फिर बदनामीसे डरते हो? देखो, एक साधारण ऋतु-परिवर्त्तन होता सैकड़ों मनुष्य अनेकानेक रोगसे मर जाते हैं। ईश्वरपर भी नामी आ जाती है और तुम इतने दिनोंकी चली चालको—बड़े आचार्योंके मतको खण्डनकर समाजको एक दूसरे नवीन ढङ्गमें ढालना चाहते हो? फिर तुमपर बदनामीका टी न लगेगा? अवश्य लगेगा; परन्तु कितने दिनोंके लिये? थ ही दिनोंके लिये जबतक कि लोग तुम्हारी बातोंका यथार्थ नहीं समझते, जबतक तुम्हारे मतके अनुयायी नहीं दिखाई दे इसके बाद जहाँ तुम्हारा मत फैला. जहाँ समाजके थोड़े घ भी तुम्हारा प्रभाव पहुँचा, तहाँ तुम आचार्य हुए, तहाँ तुम पूजा होने लगी और लोग तुम्हारे वाक्यके पीछे अपना प्राण दें

प्रस्तुत होने लगे। तुम बदनामीसे डरते हो? आचार्योंने अपना मत फैलानेके लिये अपने प्राण दे दिये हैं। क्राइस्टके जीवनपर ध्यान दो—उनका नाम ही Man of Sorrows पड़ गया। शिवनन्दन! आचार्य बननेके लिये बड़े मनोबलकी आवश्यकता है, अत्यन्त सहनशीलता और धैर्यकी जरूरत है और; फिर स्वर्गका द्वार खुला रहता है या नहीं सो परोक्षकी बात कौन जाने; परन्तु यह अवश्य है, कि घर घरका दरवाजा खुला रहता है और देशका देश उसके लिये पागल बन जाता है। अच्छा, अब जाओ, इस विषयपर खूब विचार करना और कल मुझे इस बातका उत्तर देना।"

इतना कह वल्लभदास स्वयं उठ खड़े हुए और शिवनन्दन तथा कमलेश्वरको साथ लिये हुए घरसे निकल पड़े। कमलेश्वर तथा शिवनन्दन तो एक ओरको चले गये और वल्लभदास इधर उधर घूमते हुए शहरके बाहरकी ओर चल गये।

———

सातवाँ परिच्छेद ।

ब्रजेन्द्रनारायणकी चिन्ता ।

बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके पाससे वल्लभदास तो उठकर चं आये ; परन्तु बाबू ब्रजेन्द्रनारायण एक प्रकारकी चिन्तामें निम होकर फिर उसी स्थानपर बैठ गये; क्योंकि आज वल्लभदासकी बातें ब्रजेन्द्रनारायणके मनमें एक प्रकारकी हलचल सी मचा दी थी उनका हृदय बार बार धड़कता था ; परन्तु किसी तरह भी निश्चित न कर सकते थे, कि इसका कारण क्या है। इसमें कं सन्देह नहीं, कि बाबू ब्रजेन्द्रनारायण एक साधु पुरुष थे, उन प्रत्येक बात तथा हरएक कार्यसे ईश्वरपर अविचल भक्ति झलक थी और मालूम होता था, कि उनके हृदयमें असाधारण सात्वि कता भरी हुई है। साथ ही उनका हृदय कोमल भी था औ यही कोमलता समय समयपर परदुःखकातरताका रूप ग्रहण उन्हें लोक-सेवाके लिये अग्रसर भी करती थी और कभी विपत्तिमें भी डाल देती थी। अर्थात् यह परदुःखकातरता क कभी इस श्रेणीपर पहुँच जाती थी, कि फिर बाबू ब्रजेन्द्रनाराय यह नहीं सोच सकते थे, कि जिसकी करुणाभरी भाषा दीनता-भरे भावको लक्ष्यकर वे सहायता करने चले हैं, वास्तवमें सहायताका पात्र है या नहीं अथवा वह जो भाव प्रद कर रहा है, उसमें सत्यकी मात्रा कहाँतक है। यही कारण

कि कभी कभी उन्हें आर्थिक और साथ ही मानसिक और शारीरिक हानियाँ भी सहन करनी पड़ती थीं तथा यही कारण था, कि बाबू वल्लभदासका जगदम्बाके चरित्रपर सन्देह प्रकट करना, उनके हृदयपर आघात पहुँचा गया और वे बड़े दुःखित और मर्म्माहत हुए।

इसी तरह कुछ सोचते हुए, वल्लभदास उसी स्थानपर बैठे हुए थे, कि इसी समय जगदम्बा वहाँ आ पहुँची।

एकाएक जगदम्बाको देखकर ब्रजेन्द्रनारायण बोले,—"क्यों, इस समय कैसे आई?"

इतना कहकर ब्रजेन्द्रनारायणने एक बार जगदम्बाके चेहरेकी ओर देखा। उसके निष्कलङ्क चेहरेपर एक विलक्षण ही प्रतिभा झलक रही थी।

ब्रजेन्द्रनारायणने एक बार देखकर माथा झुका लिया। मन ही मन बोले,—"न जाने किस दुर्भाग्यका इसे यह प्रतिफल मिला है। इसके चेहरेपर तो कलङ्की एक रेखा भी नहीं दिखाई देती।"

जगदम्बाने कहा,—"आप आज अभीतक भोजन करने नहीं गये।"

ब्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"योंही बैठा रह गया। अभी चलता हूँ।"

इतना कहकर वे फिर मन ही मन सोचने लगे,—"हा! विधाताकी लीलाका पता नहीं लगता। वल्लभदास जैसे पढ़े लिखे मनुष्योंके विचारका इस तरह बदल जाना, कलिका प्रभाव नहीं

तो और क्या है ? उनको इस बातका सन्देह है, कि युवती स्त्रि
अपने यौवनके वेगको नहीं रोक सकतीं ; परन्तु मैं देखता हूँ,
भारतीय रमणियाँ अपने संयमके कारण ही सब देशोंमें अग्र
और पूजनीया हो रही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि विध
ओंका कर्त्तव्य-भार बड़ा ही गुरुतर है ; परन्तु साथ ही ईश्व
उन्हें संयत रहनेकी असीम शक्ति दी है। अतः जगदम्बाके चरि
पर मैं कैसे अविश्वास कर सकता हूँ......इतना सोचते सोच
उन्होंने एक बार फिर जगदम्बाके चेहरेकी ओर देखा और कु
क्षणतक उसके चेहरेकी ओर देखते रहने बाद बोले,—"चलो बेटी
ईश्वरपर अविश्वास करना महान पाप है। वह मंगलमय है।
जाने किस पापके कारण इस समय इतनी देरके लिये यह सन्दे
मेरे मनमें आ बैठा था।"

उपर्युक्त बातें वे कुछ जोरसे बोल गये। अतः जगदम्बा कु
भी न समझ सकी, कि उनका मतलब क्या है। अतः उस
आश्चर्यसे पूछा,—"क्यों ? क्या हुआ है ? पिताजी ! आज आ
इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं ?"

व्रजेन्द्रनारायणकी आँखोंमें आंसू भर आये। उन्होंने कहा,
"बेटी ! तेरा यह दुःख मुझसे देखा नहीं जाता।"

जगदम्बा सकुचाकर बोली,—"मुझे तो कोई दुःख नहीं है।"

व्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"ईश्वर करे तू सुखी रहे।"

इतना कहकर व्रजेन्द्रनारायण जगदम्बाके साथ ही भीतर चले
गये।

पिताको भोजन करा जगदम्बा अपने सोनेवाले कमरेमें चली गई।

जबसे शारदाचरण गायब हो गया था, तबसे जगदम्बा पूजा-पाठमें ही अपना अधिक समय व्यतीत करती थी। उसका नियम था, कि सवेरे चार बजे उठकर नित्य-कृत्यसे निश्चिन्त हो, पूजन करने बैठ जाती थीं। बाबू ब्रजेन्द्रनारायणने पूजाके लिये एक अलग ही पूजन-गृह बना रखा था, उसी गृहमें राधाकृष्णकी एक जुगल जोड़ी, शालिग्रामकी मूर्त्ति, शिव तथा अन्य देवताओं-की भी मूर्त्तियाँ थीं। जगदम्बा सबेरा होनेके पहले ही वहाँ जा पहुँचती और लगभग दो घण्टेके पूजन किया करती थीं। जिस समय वह बड़े प्रेमसे राधाकृष्णका पूजन करती, उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो उसने अपना समस्त हृदय प्राण उसी देव-चरणमें अर्पण कर दिया है। जिस समय वह उनके चरणोंमें अर्घ्य प्रदान करती उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों अपने हृदयके अन्तर्गत प्रदेशमें स्थापित किसी अनिर्वचनीय प्रेम-मूर्त्तिको अपने हृदयका समस्त प्रेम अर्पण कर रही है। इसी तरह सूर्य्यो-दयके लगभग एक घण्टा उपरान्ततक वह पूजा-पाठमें निमग्न रहती। इसके बाद वह वहाँसे निकलकर गृहस्थीके कामोंमें लगती थी।

यद्यपि उसकी माता तथा दो दो भौजाइयाँ वर्त्तमान थीं, तथापि उसने गृह-कार्यका विशेष भार अपने ही ऊपर ले रखा था। उसके अकातर परिश्रम, प्रेम-पूर्ण व्यवहार तथा मीठी

बातोंसे सभी तृप्त रहते थे। इस तरह दो पहरतक सबको भो
करा, जगदम्बा स्वयं भोजन करती थी। इसके बाद रामा
महाभारत, भागवत इत्यादि ग्रन्थोंको पढ़ती। अपराह्न बाद
वही गृहस्थीके कार्यमें लगती और रात्रिके समय सबको भो
आदि करा, फिर पूजन करने बैठती। यह पूजन उसका रा
दस ग्यारह बजेतक चलता था। इसके बाद कुछ दूध लेकर
सो जाती।

यही जगदम्बाकी दिनचर्य्या थी। आज भी ब्रजेन्द्रनारायण
भोजन करा जगदम्बा अपने कमरेमें जाकर पूजनके लिये बैठ
परन्तु आज उसका चित्त कुछ व्याकुलसा हो रहा था। वह मन
मन सोचती थी, कि आज कोई न कोई नवीन बात अवश्य
है, जिससे पिता इतने चिन्तित हो रहे हैं। अस्तु,

वह पूजन समाप्त कर, अभी उठकर दूध लेनेके लिये
घरमें जा रही थी, कि उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई
धीरे धीरे बातें कर रहा है।

जगदम्बाके मनमें सन्देह हुआ। इस समय रात्रिके ग्या
बज चुके थे, चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। सब स्थान
चिराग बुझ गये थे। जगदम्बा अकचकाकर अपने चारों
देखने लगी।

इतनेमें ही उसे सुन पड़ा। मानो कोई कह रहा,—"जग
के सम्बन्धमें ऐसी बात मनमें लाना भी पाप है।" अपना
सुनकर जगदम्बा और भी अकचकायी। उसने ध्यानसे सुना

ऐसा मालूम हुआ, मानो पिता किसीसे यह बातें कह रहे हैं।

पिताके मुँहसे निकले हुए ये शब्द सुनकर जगदम्बा विषम सन्देहमें पड़ गई। उसकी इच्छा होती थी, कि चुपचाप आगे बढ़कर सुने, कि बात क्या है और पिताने ऐसी बात क्यों कही है; परन्तु तुरन्त ही उसके हृदयमें यह बात उत्पन्न हो जाती थी, कि छिपकर किसीकी बात सुनना उचित नहीं; परन्तु अपने पिताके वह शब्द जो उसके कानोंमें पड़े थे, प्रमाणित करते थे, कि उसके चरित्रपर किसीने सन्देह किया है और यह सन्देह क्यों और किस तरह किया गया है, उसे कुछ भी मालूम न होता था।

इस समय जगदम्बाको बड़ा दुःख हुआ। वह मन ही मन विचारने लगी,—"हा! यह पति-हीन स्त्री-जीवन कितना घृण्य है! कितनी आपदाओंसे घिरा रहता है! हा विधाता! तूने मुझे ऐसा क्यों बनाया?"

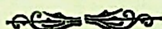
जगदम्बा एकाएक इस समय इतनी दुःखित हो उठी, कि समस्त संसार उसे अन्धकारमय और घृण्य दिखाई देने लगा, उसके हृदयमें भयानक हलचल मच गई। उसका माथा घूम गया और वह उल्टे पैरों अपनी चौकीपर जाकर पड़ रही। फिर उसने यह सुननेकी चेष्टा भी न की, कि पिता किससे और क्यों ऐसी बातें कह रहे थे।

जगदम्बा चौकीपर जाकर सो रही; परन्तु उसके हृदयमें जिस विकलताने भयानक तरंगें उठाना आरम्भ कर दिया था, उसने नींद न आने दी। चिन्ता-सागरकी उत्ताल तरङ्गोंमें निद्रा-

देवीकी सुखभरी गोद उसके लिये कण्टकमयी हो गई और
विषम वेदनासे वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी। वह बारम्बार
जोड़कर अपने आराध्य देवसे प्रार्थना करने लगी,—"प्रभो!
दुखियाको कलङ्कसे बचाओ, मेरे हृदयमें ऐसा बल भर दो,
वह रमणी-जीवनका वास्तविक आदर्श इस संसारमें छोड़ सं
इतना कह वह ध्यानसे अपने इष्ट-देवका स्मरण करने लगी।
देव-स्मरणने उसके हृदयमें कुछ शान्ति-प्रदान कर दी और लग
दो बजे रात्रिके समय उसे नींद आ गई।



आठवाँ परिच्छेद ।



बाबू कामतानाथ ।

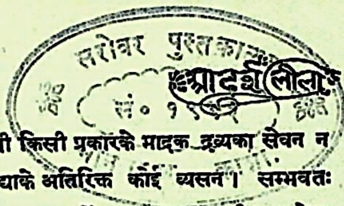
मिर्जापुरके बाबू कामतानाथ एक सुसज्जन गृहस्थ कहलाते थे। उनके घरमें लक्ष्मीका आवास जैसा था, वैसा ही सरस्वतीका भी। साथ ही धार्म्मिक कृत्योंकी भी कमी नहीं थी। बाबू कामतानाथ एक विद्वान पुरुष थे। अङ्गरेजीकी शिक्षा तो उनकी इतनी अधिक न हुई थी; परन्तु संस्कृत साहित्यका उन्होंने खूब अध्ययन किया था। वे सदा ही कहा करते थे, कि संस्कृत ग्रन्थोंमें अभीतक जो रत्न छिपे हैं, वैसे किसी भी भाषामें नहीं हैं। इसीलिये उनका अधिक समय संस्कृत ग्रन्थोंके पठन-पाठनमें ही व्यतीत होता था और इसीलिये वे अन्य पुरुषोंको भी संस्कृत साहित्यके पढ़नेका ही आग्रह किया करते थे। उन्होंने बड़े उद्योगसे दर्शनशास्त्र, तत्वशास्त्र तथा वेदान्त, साहित्य आदि विषयोंका अध्ययन कर लिया था। उनके यहाँ सदा किसी न किसी पण्डित तथा विद्वानका आगमन हुआ ही करता था और सभी उनकी विद्वत्ता, अतिथि-सत्कारमें दक्षता और सामाजिक तथा धार्म्मिक कृत्योंकी कर्त्तव्य-निष्ठा देखकर प्रसन्न होकर जाते थे। उनकी विद्वत्ता, प्रतिभा तथा कर्त्तव्य-निष्ठाके कारण मिर्जापुरमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। सामाजिक कार्योंमें वे ही एक मात्र नेता समझे जाते थे। कितने ही झगड़े

उनकी मीठी बातोंसे ही तय हो जाते थे और वादी तथा प्रति
दोनों ही उन्हें मध्यस्थ बनाकर परम सन्तुष्ट रहते थे। सा
उनके मतका सदा आदर भी हुआ करता था।

बाबू कामतानाथ कभी अप्रिय-वचन नहीं बोलते थे।
संयोग और कारणवश कोई अप्रिय बात कहनेकी आवश्यकता
पड़ती तो वे कोई शास्त्रीय या ऐतिहासिक मनुष्यका दृष्टान्त दे
अपना मत प्रकट करते थे और सुननेवाला भी समझ जाता
कि यह उनका ही मत है।

मनुष्यको आत्म-प्रशंसा सुननेकी एक प्रवृत्तिसी रहती
परन्तु बाबू कामतानाथमें यह एक असाधारण गुण था, कि
तो अपनी ही प्रशंसा सुनना चाहते थे और न दूसरोंकी निन्दा
वे परनिन्दा सुनकर बड़े ही विरक्त हो उठते थे। उनकी
भङ्गी देखकर कोई उनके सामने पर-निन्दा करनेका साहस
कर सकता था। यदि कोई ऐसा कार्य करता तो वे उससे
थे,—"तुमपर-निन्दा त्याग दो। अपने दोषोंपर ही विचार कर
त्यागो। स्वयं सत् और साधु बनो।"

एक तो उनकी प्रकृतिसे अभिज्ञ-पुरुष उन्हें कभी साक्षी
कहते ही न थे और यदि कभी ऐसा अवसर आ पड़ता और
उन्हें साक्षी बना देता तो वे तथा उनके साथी यही उद्योग
लगाते कि यह मुकद्दमा आपसमें ही निपट जाये और यह मा
ही न चले और विशेषकर होता भी ऐसा ही था, कि वह मुक
ही न चलता था।



उनके जीवनमें कभी किसी प्रकारके मादक द्रव्यका सेवन न दिखाई देता था, न विद्याके अतिरिक्त कोई व्यसन। सम्भवतः यही कारण था, कि पठन-पाठनमें इतना समय व्यतीत करनेपर भी न तो अवतक उनकी आँखोंकी ज्योति किसी प्रकारसे कम हुई और न चश्मा लगानेकी ही आजतक उन्हें आवश्यकता पड़ी।

बाबू कामतानाथके पारिवारिक मनुष्योंमें उनकी स्त्री, एक पुत्र जो इस समय संस्कृतकी आचार्य परीक्षामें उत्तीर्ण होकर, अब अँगरेजीकी प्रवेशिका परीक्षाकी तय्यारियाँ कर रहा था तथा एक कन्या थी, जिसका नाम लीलावती था।

बाबू कामतानाथने जिस तरह अपने पुत्रकी शिक्षापर ध्यान रखा था, वैसा ही कन्याकी शिक्षापर भी; परन्तु इन दोनोंकी शिक्षाओंमें अन्तर था, पुत्रको पुरुषोचित शिक्षा दी जाती थी और लीलावतीको स्त्रियोचित।

बालपनकी अवस्थासे ही लीलावती अपने माता-पिताकी बड़ी दुलारी बन गई थी। इसके बाद ज्यों ज्यों उसकी अवस्था बढ़ती चली; त्यों त्यों अपने माता-पिताकी शिक्षा पाकर वह और भी गुणवती होती चली। इधर कामतानाथने स्वयं भी उद्योगकर उसे शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। एक ओर कामतानाथ उसे भिन्न भिन्न साहित्यिक विषयोंकी शिक्षा देते गये; दूसरी ओर उसकी माता उसे घर-गृहस्थीके कार्यकी शिक्षा देती गई। परिणाम यह हुआ कि लीलावती भूगोल, इतिहास, साहित्य, व्याकरण, काव्य तथा

संस्कृतके कतिपय विषयोंमें जिस तरह पण्डिता बन गई ; तरह गृह-कार्यमें भी दक्ष हो गई ।

इन्हीं दिनों एक आवश्यक कार्यसे बाबू ब्रजेन्द्रनारायण मिर्जापुर जा पहुँचे ।

जिस तरह मिर्जापुरमें बाबू कामतानाथकी सुख्याति उसी तरह पटनेमें बाबू ब्रजेन्द्रनारायण की । दोनों स्वजातीय एक दूसरेसे परिचित थे । अतः ब्रजेन्द्रनारायण भी वहीं ठहरे ।

बाबू ब्रजेन्द्रनारायणकी कामतानाथके यहाँ इतनी खातिरदारी हुई, कि वे बहुत ही प्रसन्न हुए । साथ ही लीलाके विद्याभ्यास तथा गृह-कार्यमें चतुरताका समाचार जब सुना तो और भी प्रसन्न हुए और बहुत तरहसे उसकी प्रशंसा करने लगे ।

लीलावतीकी अवस्था इस समय ग्यारह वर्षके लगभग हो चुकी थी । अतः बाबू ब्रजेन्द्रनारायणको उसकी इतनी प्रशंसा करते देखकर, बाबू कामतानाथने कहा,—"कन्याको अपनी बुद्धिके अनुसार शिक्षित बनानेमें मैंने कोई त्रुटि नहीं की परन्तु दुःखकी बात है, कि उसके उपयुक्त वर कोई अबतक मिलता ।"

बाबू ब्रजेन्द्रनारायणने कहा,—"आपकी कन्या जिस रूपमें लक्ष्मी है, वैसी ही गुणमें गुणवती । ऐसी कन्याको वरके हाथोंमें ही अर्पण करना चाहिये ।"

बाबू कामतानाथने कहा,—"वरका चरित्र, वरके माता-पिताका चरित्र और उनका वंशदोष और गुण भी देखना उचित है। वरका रूप और धन ही यदि विवाह-सम्बन्धमें देखा जाता तो अभी राय विश्वेश्वरनाथ बहादुरके यहाँसे बात आई थी, वहीं उसका विवाह पक्का कर देता ; परन्तु आप भी तो जानते हैं, कि राय साहबने किस अत्याचार और प्रजा-पीड़न द्वारा इतना धन उपार्जन किया है। उनके चरित्रपर किसीको विश्वास नहीं है। लड़के लड़कियाँ वे ही बातें सीखते हैं जो उनके घरमें हुआ करती है। आत्मावै जायते पुत्र :—फिर क्या आशा है, कि उनका पुत्र सच्चरित्र होगा। स्त्री-जातिका महत्व साधारण नहीं है। जिनके हृदयमें क्रूरता वर्त्तमान है, वे स्त्री-जातिका महत्व नहीं समझ सकते हैं। सम्पत्ति तो क्षणस्थायी है, यदि वंशमें एक भी कुपुत्र हुआ तो वह सम्पत्तिको ध्वंस कर दे सकता है और सत्पुत्र होनेसे सत्कार्य द्वारा बहुत सम्पत्ति उपार्जन भी कर सकता है। अतः उनके पुत्रके साथ लीलावतीको ब्याहनेकी मेरी इच्छा नहीं है।"

बाबू व्रजेन्द्रनारायण बोले,—"आपका कथन तो सत्य है ; परन्तु इस कलियुगमें ऐसा सत्पात्र आपको कहाँ मिलेगा ?"

छूटते ही कामतानाथने कहा,—"है तो अवश्य ; परन्तु यह आपकी कृपापर निर्भर है।"

व्रजेन्द्रनारायण आश्चर्य्यसे उनके चेहरेकी ओर देखने लगे। बोले,—"आपकी बातका अर्थ मैं समझ न सका।"

कामतानाथने कहा,—"कन्या आप देख चुके हैं। आ
उसकी शिक्षा-दीक्षा कैसी हुई है—यह आपको मालूम हो ही
है। अतः यदि आप उचित समझें तो इसे अपने घरकी
बनायें। आपके ज्येष्ठ पुत्रका अबतक विवाह नहीं हुआ है।
कन्याको अपने कुलमें ग्रहणकर मुझे उपकृत करें।"

बाबू ब्रजेन्द्रनारायण प्रसन्न हो उठे। बोले,—"मैं सहर्ष त
हूँ। यह तो मेरे बड़े सौभाग्यकी बात है।"

उसी समय सब बातें स्थिर हो गईं। बाबू ब्रजेन्द्रना
जिस कार्यसे वहाँ गये थे, उस कार्यके कारण उन्हें कई दि
वहाँ रहना पड़ा। इस बीचमें सब बातें तय हो गईं और
उस कार्यके अतिरिक्त एक नया कार्य सम्पन्न कर बाबू ब्र
नारायण अपने घर लौट आये।

परन्तु पटने आकर ब्रजेन्द्रनारायण एक झगड़ेमें आ
बीचमें पटनेके ही नन्दनप्रसादके यहाँसे रघुनन्दनके साथ वि
करनेका पैगाम आ चुका था। नन्दनप्रसादकी कन्याकी रूप
बड़ी ख्याति थी ही. साथ ही वह धनी नन्दनप्रसादकी एकमात्र
थी. इस लिये रघुनन्दनको यौतुकमें बहुत कुछ मिलनेकी
थी। अतः प्रियम्वदाकी इच्छा थी, कि रघुनन्दनका विवाह
हो। अतः जब उसने सुना, कि बाबू ब्रजेन्द्रनारायण रघुनन्
विवाह मिर्जापुरमें पक्का कर आये, तो वह बड़ी अप्रसन्न
इसपर ब्रजेन्द्रनारायणने कन्याकी विद्या-शिक्षाकी प्रशंसा
इससे प्रियम्वदा और भी चिढ़ गई; परन्तु बाबू ब्रजेन्द्रना

वचन-बद्ध हो आये थे; इसी लिये किसीकी कुछ न चली और रघुनन्दनका विवाह शुभ मुहूर्त्तमें लीलावतीसे हो गया।

नवाँ परिच्छेद।

पति-गृह-आगमन।

लीलावतीका विवाह हो गया; परन्तु गौना उस वर्ष न हो सका। बाबू कामतानाथने कहा,—"अभी कन्याकी अवस्था छोटी है। एक वर्ष बाद इसका गौना करूँगा, तबतक इसको संस्कृतकी और भी थोड़ी शिक्षा दे दूँ।"

लाचार बाबू ब्रजेन्द्रनारायण तो राजी हो गये; परन्तु प्रियम्वदा बहुत ही अप्रसन्न हो गई। इस बातपर कुछ औरतों औरतोंमें कहा सुनी भी हो गई; परन्तु बाबू कामतानाथने इस बातपर विशेष ध्यान न दिया। उन्होंने कहा,—"कन्या अपने घरमें रखनेकी चीज़ तो है नहीं—उसे जब दान ही कर चुका तो अब अपना क्या अधिकार है? परन्तु अभी कन्या छोटी है, एक वर्ष बाद उसे विदा कर दूँगा।"

प्रियम्वदा बाईने यह उत्तर सुनकर कहा,—"अच्छा, अच्छा, अब जब उनकी इच्छा हो तब भेजें, अब मैं कभी अपना मनुष्य

घुलानेके लिये न भेजूँगी। न जाने पढ़ा पढ़ाकर उसकी
खायँगे, कि क्या ?"

परन्तु व्रजेन्द्रनारायणने हँसकर अपनी स्त्रीकी बात उड़ा
कुछ उत्तर ही न दिया। एक वर्ष बाद शुभ मुहूर्त्त देख,
व्रजेन्द्रनारायणने कामतानाथको लिखा और उन्होंने भी
अपनी कन्याको विदा कर दिया।

लीलावती जिस समय अपनी ससुराल आई, उसके पहले
शारदाचरण गायब हो चुका था और जगदम्बा अपने माय
चुकी थी। गृहस्थीकी अस्तव्यस्त दशा हो रही थी; क्योंकि
कार्यका भार प्रियम्वदापर था। यद्यपि विचारी जगदम्बा
माताकी समय समयपर सहायता किया करती थी;
एकाएक नवीन आपदामें पड़ जानेके कारण उसका चित्त
चञ्चल और व्यग्र हो रहा था। काम-काजमें विशेष चित्त
न था। अतः जब लीलावती वहाँ पहुँची तो उसने देखा
गृहस्थीके काम-काजमें बड़ी ढिलाई है, कोई भी कार्य सु
रूपसे सम्पादन नहीं होता। सास सदा सर्वदा दास-दासि
बिगड़ा और झल्लाया करती हैं। नौकर, दाई भी कितने ही
और नित्य-प्रति छोड़कर चले जाते हैं। ससुरको पूजा-पाठ
अपने काम धन्धेसे फुर्सत नहीं है; इसलिये उन्होंने गृहस्
समस्त भार अपनी स्त्रीपर ही दे रखा है; परन्तु अकेली प्रिय
सम्हाल नहीं सकती है।

तीन दिनोंतक तो लीलावती यह अवस्था देखती

इसके बाद चौथे दिवससे उसने कार्य-भार अपने हाथमें लिया। वह खूब सवेरे ही स्नान कर आई। स्नान और तुलसी-पूजन कर वह रसोईके प्रबन्धमें लगी। बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके यहाँ नित्य दो पहर बाद भोजन होता था। नित्य सवेरेसे ही काम-काजके लिये हो-हल्ला मचता दिखाई देता था। लीलावतीने दासियोंको समझा बुझाकर यह हो-हल्ला शान्त करा दिया। इसके बाद रसोईकी तय्यारी कर अपनी सासको समाचार दे दिया। इस सुप्रबन्धके कारण रसोईमें जो विलम्ब होता था, वह दूर हो गया। इसके अतिरिक्त घरके सभी काम लीलावती बड़ी तेजी और प्रसन्नतासे करने लगी। अबतक जो कार्य दुरूह और कष्टकर मालूम होते थे, वे भी सहजमें ही सम्पन्न होने लगे। लीलावतीकी यह तेजी और कष्ट-सहिष्णुता और कार्य-क्षिप्रता देख देखकर ब्रजेन्द्रनारायण बड़े ही प्रसन्न हुए। वे अपनी कन्या जगदम्बाके समान उसे समझने लगे। लीलावतीने इस तरह थोड़े ही दिनोंमें उस घरमें अपना प्राधान्य स्थापित कर लिया; परन्तु इतना करके भी उसने अपना पढ़ना न छोड़ा। वह अवसर पाते ही पुस्तक लेकर बैठ जाती थी।

लीलावतीको काममें इतनी तेज देखकर एक दिवस जगदम्बाने कहा,—"बहन! तुमने इतनी शिक्षा पायी है। इतना पढ़ा लिखा है। मैं समझती थी, कि तुम इस गृह-कार्य्यको घृणित समझोगी। केवल मेरी ही नहीं, इस घरके सब मनुष्योंकी ही यही धारणा थी; परन्तु तुममें तो इस अभागी घृणाका लेशमात्र भी नहीं दिखाई देता है।"

लीलावतीने कहा,—"गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंमें श्रे
यदि गृहस्थाश्रम न रहता तो ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ
भिक्षुक संन्यासी कोई भी दिखाई न देता। फिर उन्हें
कहाँसे मिलती ? इसलिये अन्यान्य आश्रमोंकी स्थितिके
गृहस्थाश्रमकी प्रधान आवश्यकता है। फिर गृहस्थाश्रम
घरके कामोंपर घृणा करनेकी आवश्यकता क्या है ?"

जगदम्बाने कहा,—"मैं देखती हूँ, कि घरके सभी
करनेके लिये तुम तय्यार रहती हो। फिर दास-दासियोंकी आ
ही क्या है ?"

लीलावती बोली,—"वास्तवमें घरके सब काम हमलो
अपने हाथों ही करने चाहियें और दास-दासियोंसे जो
सहायता मिल जाये, वही यथेष्ट समझना चाहिये, क्योंकि हम
कर्त्तव्य और प्रेमके अनुरोधसे घरके सब काम करनेके लिये
रहती हैं ; परन्तु दास-दासियाँ केवल धनके लोभसे कार्य
हैं। धनके लोभसे क्या कोई काम ठीक हो सकता है ? आज
उन्हें धनका प्रलोभन न रहे अथवा दूसरी जगह अधिक
मिलनेकी आशा हो तो वह हमें छोड़कर चले जायँगे।"

जगदम्बाने कहा,—"तब तुम्हारे विचारसे इन दास-दासि
न तो कभी विश्वास करना चाहिये और न उनसे विशेष
ही लेना चाहिये।"

लीलावती बोली,—"नहीं, मेरा अभिप्राय कुछ दूसरा ही
दास-दासियोंके साथ कार्य सम्बन्धके साथ ही स्नेह-सम्बन्ध

स्थापित करना चाहिये। उनके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि वे भी परिवारके मनुष्य जैसे बन जायें; परन्तु इसके साथ ही इस बातपर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये, दास-दासियाँ ढीठ होकर मुँह न लग जायें। इस संसारमें व्यवहार ही वास्तविक पदार्थ है, व्यवहार द्वारा पशु-वशमें आ जाते हैं, मनुष्य तो बुद्धि-ज्ञान सम्पन्न जीव हैं।"

जगदम्वाने कहा,—तुम्हारा कथन सत्य है। वास्तवमें यही कारण है, कि आजकल यहाँके दास-दासी भागते नहीं और नित्य नये मनुष्योंको नियुक्त करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।"

लीलावती बोली,—"यह तो मैं नहीं कह सकती, कि वे अब क्यों छोड़कर नहीं जाते; परन्तु मेरी धारणा यही है, कि प्रेम-पूर्ण व्यवहार द्वारा अभीष्ट साधनमें शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।"

जगदम्वा बोली,—"भाभी! तुम रूप और गुण दोनों ही लेकर इस घरमें आई हो, हमलोगोंने तो कुछ पढ़ा लिखा नहीं, इसलिये कुछ कह नहीं सकतीं। परन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है, कि इतना पढ़ लिखकर भी तुममें अभिमान न आया और तुमने हमलोगोंको हीन-दृष्टिसे न देखा।"

लीलावतीने कहा,—"क्या कहती हो? विद्या, शिक्षा, अभिमान और घृणा करनेके लिये नहीं, वरन निरभिमानी, नम्र और सुशील बननेके लिये दी जाती है। जिस शिक्षासे यह गुण न उत्पन्न हो वह शिक्षा ही वृथा है। जिस शिक्षा द्वारा गुरुजनोंपर श्रद्धा

करनेकी प्रवृत्ति न हो, जिससे अपने धर्मपर आस्था न हो
जिससे प्रेम और सौहार्द उत्पन्न न होकर घृणा और द्वेष
हो, उस शिक्षाका फल ही क्या है? बहन, तुमलोगोंकी
और भक्ति करना ही मेरा कर्त्तव्य है और यही मेरी शिक्षा

जगदम्बा कुछ उत्तर देना ही चाहती थी, कि इसी
उसकी माता वहाँ आ पहुँची। प्रियम्वदा बाईको देखकर
ही चुप रह गई।



दशवाँ परिच्छेद।

——:|:——

समाज-सेवक।

बाबू वल्लभदास तथा कमलेश्वरने समाज-सेवक तथा नेता बनने की जो अकाँक्षा शिवनन्दनके हृदयमें उत्पन्न कर दी, उससे शिवनन्दनने विचारा, कि इसमें कोई सन्देह नहीं, कि कीर्त्ति ही चिरस्थायिनी होती है। परन्तु किसी चिर-प्रचलित प्रथाको उलट पलटकर डालनेमें पहले तो बदनामी आती ही हैं, परन्तु इसके बाद वह बदनामी नेकनामीमें परिणत हो जाती है। अतः इसी कार्यका भार अपने ऊपर उठाना चाहिये। उसका चित्त पढ़नेमें लगता न था और बिना पढ़े गृहस्थीका खर्च कैसे चलता? अतः वल्लभदासके यहांसे उठकर शिवनन्दन कमलेश्वरके साथ ही उसके मकानपर गया।

कमलेश्वर इस समय अपनी घातमें था और शिवनन्दन अपनी। कमलेश्वर चाहता था कि शिवनन्दन उसके वशमें रहकर उसकी इच्छा पूर्ण करे और शिवनन्दनकी यह धारणा थी, कि यदि कमलेश्वर उसे धनकी सहायता देता तो वह पढ़ना छोड़कर एकमात्र सुधारके कार्यमें अग्रसर होता।

इन्हीं विचारोंमें लीन रहकर शिवनन्दन कमलेश्वरके यहाँ जाकर चुप बैठ रहा। उसे इस तरह चुप और कुछ सोचते हुए देखकर कमलेश्वरने पूछा—"क्यों शिवनन्दन! इस समय इतने उदास क्यों हो रहे हो?"

शिवनन्दनने कहा,—"वल्लभदासजीकी बातोंने आज माथा खराब कर डाला है।"

कमलेश्वर बोला,—"उन्होंने कोई बेजा बात तो नहीं है।"

शिवनन्दनने कहा,—"हाँ, बेजा तो नहीं कही है परन्तु मनुष्यके सामर्थ्यके बाहरकी बात है।"

कमलेश्वर बोला,—"पात्र देखकर ही दान दिया जा वल्लभदास कोई साधारण पुरुष नहीं हैं, उन्होंने तुम्हारी शक्ति सामर्थ्य देखकर ही इस कामका भार लेने कहा है।"

शिवनन्दनने कहा,—"देखो, इस कामका भार लेकर पढ़ना लिखना नहीं हो सकता। परन्तु मुझे घरका खर्च च भी ख़याल करना पड़ता है।"

पहले ही कह चुके हैं, कि कमलेश्वर एक धनी पुरु उसने तुरत ही कहा,—"मित्र! इसकी क्या चिन्ता है, पचास महीनेका तो मैं अभी ठिकाना कर देता है। तुम जानते मुझे एक मनेजरकी जरूरत है और कोई काम देखनेवाला वि मनुष्य नहीं है। अतः तुम कलसे ही मेरा काम सम्हाला पचास रुपये मासिक खर्चके लिये तुम लेते जाना। इ एक मासका अग्रिम ले लो।"

सुनते ही शिवनन्दन प्रसन्न हो गया। बोला— वास्तवमें इस समय मित्र सा काम किया है। अब मैं ही तुम्हारी इच्छानुसार काम करूँगा।"

कमलेश्वर मुस्कुराया। बोला,—"मेरी तुम्हारी मित्रता कैसी है, इसका हाल तुम्हें आगे चलकर मालूम होगा।"

पचास रुपये मासिक आमदनीकी आश्वासनवाणी सुनकर शिवनन्दन बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने उसी समय स्थिर कर लिया कि, अब इसी कार्यको करना चाहिये और बड़ी प्रसन्नतासे लौटकर घर गया। इसी विषयकी बातोंमें आज उसे घर जानेमें विलम्ब भी हो गया परन्तु इस बातकी उसे कुछ पर्वाह न थी।

इधर घर जाते ही रघुनन्दनके लौट आनेका समाचार उसे मिला और रघुनन्दनने उसे कमलेश्वरका साथ छोड़ देनेका उपदेश दिया।

रघुनन्दनका उपदेश सुनकर शिवनन्दन तिलमिला उठा; परन्तु उसे यह कहनेका साहस न हुआ, कि आजसे उसने दूसरा ही कार्यभार उठा लिया है। उसके हृदयमें यही धारणा हुई, कि उसकी भौजाईने ही उसकी निन्दा की है और इसी लिये वह मन ही मन कुढ़ता हुआ अपने कमरेमें चला गया।

इस समय रातके ग्यारह बजनेका समय हो चुका था। रूपावती अभीतक जागती बैठी थी। शिवनन्दनको आते देखकर उसने कहा,—"आज ऊपर क्या हो रहा था?"

शिवनन्दन बोला,—"हमें नित्य-प्रतिकी यह खटपट पसन्द नहीं है।"

रूपावतीने कहा,—"क्यों क्या, हुआ?"

शिवनन्दन बोला, -"होगा क्या? सब समझते हैं, कि मैं

उनका दब्बू हूँ। मैं अब दबकर इस घरमें नहीं रहना चाह
मालूम होता है, कि भाभीने भय्यासे कुछ शिकायत की है।"

चम्पावती बोली, –"क्या शिकायत की है? यह मैं
मालूम हो।"

शिवनन्दन बोला,––"यही कि मैं बराबर कमलेश्वरके
रहा करता हूँ। मान लो, कि रहता हूँ, तो क्या बेजा करता
जो उन लोगोंको बुरा मालूम होता है।"

चम्पावती––"बुरा माननेका कारण क्या है, सो मैं तो
नहीं; परन्तु सुना है, कि उनका चरित्र अच्छा नहीं है।"

शिवनन्दन झल्ला उठा। बोला,––"तुम भी मेरे मित्रको
कहती हो, खबरदार! आजसे ऐसी बात अपने मुँहसे न नि
लनी।"

चम्पावतीने कहा,––"देखिये, मुझे आपके मित्रको दोष
अधिकार नहीं है। क्षमा कीजिये; परन्तु मेरी केवल एक
है––वह यह कि आपपर किसी प्रकारका कलङ्क मैं नहीं
सकती और आपपर किसी प्रकारका दोषारोपण मैं नहीं
सकती। यदि कमलेश्वरकी सङ्गतिके कारण ही आपपर
लगे, आपपर दोषारोपण हो, तो आप उसे त्याग दीजिये।
सङ्गतिका लाभ ही क्या, जिससे कलङ्क लगे!"

शिवनन्दन बोला, –"तुम मेरी स्त्री होकर मुझे उपदेश
हो? यही तुम्हारी शिक्षा हुई है? तुम्हारा इतना साहस हो गया

चम्पावती दुःखित होकर बोली,––"आप मेरे गुरु, देवता

पूजनीय हैं। वास्तवमें आपको उपदेश देनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है; परन्तु नाथ! इतना कहनेका अधिकार तो अवश्य है, कि आप ऐसा कोई कार्य न करें; जिससे आपकी ओर उँगली दिखानेका किसीको साहस हो।"

शिवनन्दनको आशा थी, कि चम्पावती अवश्य ही उसके पक्षमें मत देगी। परन्तु अपनी स्त्रीको विपक्षमें देखकर वह और भी बिगड़ उठा। बोला,—"चुप रहती हो या अपनी कुछ दुर्दशा कराओगी।"

लाचार चम्पावती चुप हो गई। उसको चुप देखकर शिवनन्दन बोला,—"खाली बकबक करना ही जानती हो या और भी कुछ? कमलेश्वर मुझसे कितना प्रेम रखता है, इसका इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है, कि उसने मुझे पचास रुपये महीना देना स्वीकार किया है और काम भी कुछ नहीं केवल उनके कारबारकी साधारण देख-रेख।"

चम्पावतीने फिर भी कुछ उत्तर न दिया। वह मन ही मन सोचने लगी, कि क्या कारण है, कि कमलेश्वरने इनको पचास रुपये महीना देना स्वीकार किया है। उसे चुप देखकर शिवनन्दन और भी उत्साहसे बोला,—"इस जगतमें ऐसे मित्र बहुत कम मिलते हैं। आजकल अच्छे अच्छे बी० ए० एम० ए० पचास रुपये मासिकके लिये मारे मारे फिरते हैं। इस अवस्थामें मुझ जैसी विद्या-बुद्धिवाले मनुष्यको ५०) मासिक देनेके लिये तय्यार हो जाना—सहज काम नहीं है।"

इतना कहकर शिवनन्दन उत्तरकी प्रतीक्षासे अपनी स चेहरेकी ओर देखने लगा। चम्पावती उसके मनका भाव सम कर बोली,..."आपको उपदेश देनेका मुझे कोई अधिकार नहीं परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगी, कि कमलेश्वर बाबूने बिना कि स्वार्थके ही आपको यह मासिक देना स्वीकार नहीं किया परन्तु यह तो बताइये, कि क्या इस सम्बन्धमें आपने अपने की अनुमति ले ली है ?"

शिवनन्दनने चिढ़कर कहा,—"कल किसी तरह उन्हें दूँगा। भाभीके पेटमें कोई बात तो पचती नहीं, भाभीसे देनेसे ही काम बन जायगा।"

चम्पावती बोली,—"उन्हें क्यों दोष देते हैं ? वे कभी कि की शिकायत नहीं करतीं।"

शिवनन्दन बोला,—"तुम अभी क्या जानती हो ? केवल फ़ुदसे जन्मभर काम रहा है।"

इतना कहकर शिवनन्दन तो सो रहा; परन्तु चम्पावती मारे चिन्ताके रातभर नींद न आई। रह रहकर उसे यही आ होती थी, कि कहीं ऐसा न हो, कि ये कोई विपत्तिमें पड़ जा

दूसरे दिन दोपहरके समय लीलावती अपने कमरेमें बै कुछ पढ़ रही थी, इसी समय शिवनन्दन दबे पाँव वहाँ पहुँचा।

लीलावतीने एकाएक इस समय शिवनन्दनको अपने क देखकर पूछा,—"कहिये इस समय कैसे आ पहुँचे ?"

शिवनन्दनने कहा,—"आज तुमसे कुछ सलाह करनी है, इस लिये इस समय तुम्हें कष्ट देने आया हूँ।"

लीलावती बोली,—"आज कैसी सलाह है; परन्तु इस बातको अपने मनसे भुला दीजियेगा, कि मैंने किसीसे आपकी निन्दा की है।"

शिवनन्दनने मुस्कराकर कहा,—"जब मनुष्य कोई नवीन कार्य करनेके लिये अग्रसर होता है, तब उसे निन्दा और शिकायतका प्रचण्ड आघात सहन करनेके लिये तय्यार रहना पड़ता है। अभी क्या हुआ है, अभी तो मैं जिस कामका भार लेनेवाला हूँ, उसमें कितनोंको ही निन्दा करनेका अवसर मिलेगा। खैर, एक बात बताओ, मुझे ५०) रुपये महीनेकी एक नौकरी मिल गई है। मेरा विचार है, कि यह काम कर लूँ।"

लीलावती बोली,—"यह नौकरी कहाँ मिल गई?"

शिवनन्दनने कहा,—"कमलेश्वरके यहाँ। उनका कारबार देखना पड़ेगा।"

लीलावतीने आश्चर्य्यसे कहा,—"कमलेश्वर बाबूके यहाँ! उनका और आपका मित्रताका सम्बन्ध है। ऐसे स्थानमें नौकरी करना उचित नहीं जान पड़ता और फिर अभीसे आपको नौकरी करनेकी आवश्यकता ही क्या है?"

शिवनन्दन बोला,—"मैंने स्वीकार कर लिया है। तुम भय्यासे कह देना, मुझे कहते शर्म मालूम होती है।"

इतना कहकर लीलावतीके बार बार आग्रह करनेपर भी शिवनन्दन उठकर चला गया।

रघुनन्दन इस समय कहीं बाहर गया हुआ था, उसके आनेपर लीलावतीने उसे यह समाचार कहा। सुनकर वह बोला,—"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, कि उसके लक्षण नहीं मालूम होते। खैर, एक बार और भी समझा दूँगा। कुछ बच्चा तो है नहीं, कि उसको बाँधकर रखूँगा।"

अभी इन दोनोंमें इस तरह बातें हो ही रही थीं, कि ए नीचेसे प्रियम्वदा बाईने रघुनन्दनको पुकारा।

उनकी आवाज कुछ घबड़ाई सी मालूम होती थी। रघुनन्दन तुरत ही नीचे जा पहुँचा। प्रियम्वदा बाईने "कल शामसे ही तुम्हारे पिताजीको ज्वर आया हुआ था समय उनके कलेजेमें बड़ा दर्द हो रहा है और वे अत्यन्त व्या दिखाई देते हैं।"

रघुनन्दन घबड़ाता हुआ अपने पिताके पास जा वास्तवमें बाबू ब्रजेन्द्रनारायण ज्वरके प्रबल वेगमें अत्यन्त हो रहे थे, उनके कलेजेमें बड़ा दर्द हो रहा था और रह र घबड़ा उठते थे।

रघुनन्दनने तुरत ही वैद्यको बुलानेके लिये मनुष्य ओषधि होने लगी; परन्तु ज्यों ज्यों औषधि होती गई, रोग भी अपना वेग बढ़ाता।

पहले तो प्रियम्वदाने उनकी सेवा-शुश्रूषाका भार इधर लीलावतीने गृहस्थीका बोझ अपने माथे लिया; परन्तु दिनस इस भाँति बीत जानेपर भी जब ब्रजेन्द्रनारायण रोग

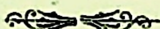
हुए, तब तो वैद्य डाक्टरोंने यह अनुमति दी, कि इन्हें वायु-परि-र्त्तनार्थ बाहर भेज देना चाहिये ।

इधर एक दूसरी विपत्ति और भी आ पहुँची । जगदम्बाके पति ारदाचरणके पिता कालीचरणको और कोई सन्तान न थी । काली-रणका पहले ही देहान्त हो चुका था । अतः इस समय उस सम्प-त्तिकी स्वामिनी शारदाचरणकी माता ही थीं । भागलपुरमें कुछ ऐसे लुष्य भी थे, जिनका उस सम्पत्तिपर दाँत लगा हुआ था । इस म्पत्तिके सम्बन्धमें शारदाचरणके जीवित रहते ही एक वार मुक-मा चल चुका था । अतः शारदाचरणके गायब हो जानेके कारण त्रुओंको और भी अवसर मिल गया, अतः बड़े जोरोंमें मुकद्दमा लने लगा । इस समय जगदम्बाकी सासने उसे बुला भेजा और ाचार होकर जगदम्बाको भी वहाँ जाना पड़ा । यद्यपि इस वस्थामें पिताको छोड़कर उसकी जानेकी इच्छा न होती थी, थापि उसे बाध्य होकर जाना ही पड़ा ।

इधर जगदम्बा अपनी ससुराल चली गई । अब यह समस्या पस्थित हुई, कि ब्रजेन्द्रनारायणके साथ कौन जाये ? दोनों हुओंके भरोसे गृहस्थी छोड़नेके लिये प्रियम्वदा तय्यार न थी । ाचार लीलावती जानेके लिये प्रस्तुत हुई । उसने कहा,—"इतने ेच विचारकी आवश्यकता क्या है ? वे मेरे पिताके तुल्य हैं । नकी सेवा करनेमें किसी बातकी अड़चन नहीं है ।"

अस्तु, यही निश्चित हुआ और ब्रजेन्द्रनारायणके साथ रघु-न्दन और लीलावती भी कांथलवरके लिये रवाना हुए ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।



ब्रजेन्द्रनारायणकी स्वर्ग-यात्रा ।

ब्रजेन्द्रनारायण पटनेसे कोयलवर लाये गये । एक सुन्द
वाटिकामें उन्हें रखा गया । आरा-नगरके एक सुप्रसिद्ध
दवा होने लगी । इधर लीलावतीने उनकी सेवा सुश्रू
रघुनन्दनने उनकी ओषधि तथा अन्य उपचारका भार लिया

लीलावती बड़े स्नेहसे ब्रजेन्द्रनारायणकी सेवा-सुश्रू
लगी । यद्यपि वह उस घरकी बहू थी तथापि उसने इस
उस रिश्तेदारीको दूर रखकर गृह-पालिता कन्याके स
ब्रजेन्द्रनारायणकी सेवा करनी आरम्भ की । वही उनको
पड़नेपर उठाती, बैठाती, उन्हें अपने हाथों ओषधि दे
आवश्यकता पड़नेपर उनके सभी कार्य करती थीं ; क्योंकि
नन्दनको इधर उधर ओषधि उपचारके लिये दौड़नेसे फुरस
थीं । वह केवल उसी समय अपने पिताके पास बैठता था
समय लीलावती रसोईके लिये जाती थीं ।

इसी तरह लगभग पन्द्रह दिवसके बीत गये ; पर
ब्रजेन्द्रनारायणका रोग न घटा । वैद्योंने उन्हें क्षयी
दिया । अब रघुनन्दन घोर विपत्तिमें जा पड़ा । एक तो
दूसरे परिश्रम, तीसरे धन-चिन्ता सभी आकर उसको
लगे । अबतक तो वह यही समझता था, कि घरमें ब

भरी है और उसीसे आनन्दसे खर्च चलता है; परन्तु अब उसे मालूम हुआ, कि उसकी धारणा भ्रान्त है।

रघुनन्दन जितने रुपये लेकर आया था, उतने करीब करीब खर्च हो चले थे। उसने शिवनन्दनके नाम एक पत्र भी भेजा था, जिसका एक सप्ताह बीत जानेपर भी अबतक कोई उत्तर न आया था, इस लिये वह बराबर चिन्तित और उद्विग्न रहता था।

कोयलवरमें उसका कोई परिचित न था। पटनेके ही एक धनी पुरुषने एक बाग बनवाया था, जिसमें इस समय व्रजेन्द्रनारायणका डेरा था; परन्तु ऐसा कोई आत्मीय अथवा परिचित स्नेही वहाँ न था, जिससे वह आवश्यकता पड़नेपर रुपये मांग सकता।

एक दिन दोपहरके समय वह आरेसे लौटकर आया था। एक तो गरमीका दिन, कड़ी धूप, अभी अभी वह रेलसे उतरकर आया और मकानमें घुसते ही घबड़ाकर एक ओर बैठ गया।

उसका चित्त इस समय अत्यन्त चंचल हो रहा था। उसकी यह दशा देख लीलावतीने कहा,—"आज आपकी क्या दशा है? आप इतने घबड़ा क्यों रहे हैं?"

रघुनन्दनने कहा,—"आज रुपयेके अभावसे औषधि न आ सकी। अभी अभी एक पत्र मिला है, जिसमें लिखा है, कि शिवनन्दनने अब उस घरमें आना जाना त्याग दिया है। किसी बातपर झगड़ा कर चला गया है।" इतना कहते कहते रघुनन्दनकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें टपक पड़ीं।

लीलावतीने कहा,—"उनकी तो ऐसी प्रकृति न थी।
कारण है, जो वे घर छोड़कर चले गये ?"

रघुनन्दनने कहा,—"कारण क्या बतायें ? माताने दोनों
पत्र लिखवाकर भेजा है, उसका आज दस दिनोंसे पता
विचारी वह दिन रात रोया करती है। इधर घरसे रुपये
कोई ठिकाना नहीं है। अब क्या किया जाय ? इस
पिताजीको यह समाचार कहना भी अनुचित ही है।"

लीलावतीने गलेसे सोनेका कण्ठहार निकाल कर
कहा,—"रुपयोंकी क्या चिन्ता है ? यह किस दिवस
आयगा ?"

रघुनन्दनने एक बार उस हारकी ओर देखा। इस
फिर जमीनकी ओर देखने लगा। उसके चेहरेसे स्पष्ट
होता था, कि उसके हृदयकी विकलता बढ़ती ही जा रही

तुरत ही लीलावतीने फिर कहा,—"क्या सोच रहे हैं
क्या किसी दूसरेकी सम्पत्ति है ?"

रघुनन्दनने कहा,—"यह तुम्हारे पिताकी दी हुई स
इसपर मेरा कोई अधिकार नहीं है।"

लीलावती बोली,—"जब मुझपर ही आपका पूर्ण अ
है, फिर यह सम्पत्ति किसकी है ? पिताने तो इसे मुझे
है। यह अब मेरा है, अतः इसपर आपका पूरा अधिकार है

इसी समय व्रजेन्द्रनारायणके खाँसनेका शब्द सुन
लीलावती वह कण्ठहार उसी स्थानपर फेंककर दौड़ती हुई

ास जा पहुँची। इस समय कफ़के साथ बहुत सा रक्त निकल जानेके कारण ब्रजेन्द्रनारायण मूर्च्छितसे हो गये। थोड़ी देरतक दोनों ब्रजेन्द्रनारायणकी सुश्रूषा करते रहे। इसके बाद जब वह होशमें आ गये तो रघुनन्दन बड़े दुःख और लाचारीसे वह हार बेचनेके लिये चला गया। लगभग दो तीन घण्टे बाद वह रुपये तथा ओषधि लेकर लौट आया; परन्तु आज ब्रजेन्द्रनारायणकी दशा उत्तरोत्तर खराब ही होती जाती थी। वैद्यको भी रघुनन्दन साथही ले आया था, उसने भी देखकर इनके जीवनसे निराशा ही प्रकट की।

अब रघुनन्दन बहुत ही घबड़ा उठा। उसी समय एक तार उसने अपनी माताको दिया, दूसरा भागलपुर जगदम्बाको दिया गया।

इसके बाद दो तीन दिनोंतक तो ब्रजेन्द्रनारायणकी अवस्था कुछ अच्छी रही। इसी बीच जगदम्बा भी भागलपुरसे आ पहुँची और पटनेसे प्रियम्वदा तथा चम्पावती भी आ गईं; परन्तु शिवनन्दन न आया।

इधर ब्रजेन्द्रनारायणकी अवस्था दिनों दिन खराब होती चली। अन्तमें जिस भीषण दिवसके आगमनका लोग भय कर रहे थे, वही दिवस आ पहुँचा।

एक दिन सवेरे ही बाबू ब्रजेन्द्रनारायणको जोरका ज्वर चढ़ा, बार बार कै होने लगी। कैके साथ रक्त वेगसे निकलने लगा। ब्रजेन्द्रनारायण भी समझ गये, कि अब उनका समय निकट आ

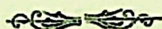
गया है। अतः उन्होंने रघुनन्दनको बुलाकर कहा,—"अब
दो घण्टोंका मेहमान हूँ। अब यह शरीर बहुत ही खराब हो
है, इसके बदलनेका अवसर आ पहुँचा है। मेरे पास कोई
तो है नहीं, जिसे तुम दोनोंको दे जाऊँ ; परन्तु कामता
जो सम्पत्ति तुझे दी है, उसका पूरा पूरा आदर करना।
गृहलक्ष्मी जिसके यहाँ है, उसे किसी पदार्थकी कमी न
जाओ, मैं आशीर्वाद देता हूँ, कि तुम सुखसे रहोगे।"

रघुनन्दनने रोते हुए, पिताका चरण स्पर्श किया।
नारायणने आशीर्वाद देते हुए कहा,—"अब रोते क्यों हो
अन्तिम कालमें तुम लोगोंका रुदन सुनकर मेरा आत्मा
होता है और ममता संसारकी ओर आकर्षित करती है।
इस समय अपना कर्त्तव्य पालन करो। अब ओषधि देनेकी
श्यकता नहीं है, किसीको बुलाओ, एक बार गीता सुनाओ।"

रघुनन्दनने उसी समय पिताकी आज्ञाका पालन
समस्त दिवस गीताका पारायण होता रहा। सन्ध्या होते
बाबू ब्रजेन्द्रनारायणका शरीर शिथिल होने लगा। यही
रातभर रही और सबेरा होते होते बाबू ब्रजेन्द्रनारायण
कर्ममय जगतको त्यागकर सुरपुर पधार गये।



बारहवाँ परिच्छेद ।



रघुनन्दनकी चिन्ता ।

बावू व्रजेन्द्रनारायणकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर जिस समय रघुनन्दन निश्चिन्त हुआ, उस समय उसे ऐसा मालूम हुआ, कि उसके सरपर मानो विधाताने एक बड़ा बोझा लाद दिया है ; क्योंकि अबतक उसे किसी बातकी चिन्ता न थी, उसका समस्त दिवस पठन-पाठनमें ही व्यतीत होता था और गृहस्थीकी कोई भी चिन्ता उसे न सताती थी ; परन्तु इस समय उसे चारों ओरसे विपत्ति अग्रसर होती हुई मालूम हुई। वह समझता था, कि उसके पिताके पास अच्छी सम्पत्ति है ; परन्तु अब उसे स्पष्ट मालूम हो गया, कि सौ बीघा जमीन और कुछ जेवरोंके अतिरिक्त उसके पास और कुछ नहीं बचा है।

परन्तु इससे बढ़कर भी एक चिन्ता उसके माथे और भी सवार हो गई थी। अर्थात् लगभग एक मासके हो गया शिवनन्दनका पता न था। वह कहाँ चला गया, इसकी भी कोई खबर न मिलती थी। चम्पावती बड़े कष्टसे रो रोकर अपने दिवस बिता रही थी। उसका यह कष्ट और चिन्ता देख देखकर रघुनन्दन बड़ा ही चिन्तित रहता था। उसे अपनी स्त्रीसे मालूम हुआ था, कि शिवनन्दनने ५०) मासिकपर कमलेश्वरके यहाँ नौकरी कर ली है ; परन्तु कमलेश्वरके यहाँ कई बार पुछवानेपर भी

उसका कोई पता न लगता था और कमलेश्वर स्पष्ट क
कि मुझे नहीं मालूम कि वह कहाँ चला गया।

एक दिन सन्ध्याका समय था। रघुनन्दन दुःखित
अपने बैठकखानेमें बैठा हुआ था, कि इसी समय कमलेश्व
आ पहुँचा। कमलेश्वरसे रघुनन्दनकी विशेष जान पह
थी; परन्तु वह उसे पहचानता अवश्य था, इसी लिये
कमलेश्वरको बड़े आदरसे अपने पास बैठाया और कुशल
किया।

इसके बाद रघुनन्दनने कहा,—"पिताको स्वर्ग
भी लगभग एक मासके हो गया, परन्तु शिवनन्दनका
पता नहीं है। वह कहाँ चला गया, इसका भी कुछ पत
लगता। क्या आपको कुछ समाचार मालूम है?"

कमलेश्वरने कहा,—"न मालूम वे कहाँ चले गये।
स्वयं बड़ी चिन्ता है; क्योंकि मेरा कई हजारका हिसाब
उनके हाथोंमें है। आपको मालूम होगा, कि मैंने उन्हें
दुकानका प्रबन्धकर्त्ता नियुक्त किया था, सब हिसाब-
उनके ही हाथोंमें था।"

रघुनन्दनने कहा,—"इसकी तो मुझे कोई खबर नहीं;
इतना मैंने अवश्य सुना था, कि उसने आपके यहाँ नौकरी
ली है। तो क्या आपके रुपये भी उसके पास ही रहते थे
कमलेश्वरने कहा,—"सच तो यह है कि, कि मैं उन्हें
भाईके समान समझता था। किसी बातका प्रभेद उनसे

रखता था, इसीलिये रुपये-पैसे ताली-कुञ्जी सब उनके सुपुर्द कर ही निश्चिन्त रहता था।"

रघुनन्दनके चेहरेपर चिन्ताकी मात्रा और भी बढ़ गई। वह चुप हो गया। उसको चुप देखकर कमलेश्वरने कहा,—"यह न समझियेगा, कि मैं आपसे रुपयेका तकाजा अथवा शिवनन्दनकी शिकायत करने आया हूँ। आप तो स्वयं ही इस समय विपत्तिमें पड़े हैं। इस अवस्थामें आपसे कुछ कहना तो वृथा ही है। यदि आवश्यक हो तो मैं और भी कुछ सेवा करनेके लिये तय्यार हूँ।"

रघुनन्दनने कमलेश्वरको धन्यवाद देते हुए कहा,—"आपकी इस कृपाके लिये धन्यवाद है, परन्तु अभी तो ईश्वरकी दयासे काम चल ही रहा है। आपसे केवल एक प्रार्थना है—किसी तरह शिवनन्दनका पता लगानेकी चेष्टा कीजिये।"

कमलेश्वरने कहा,—"आप क्या समझते हैं, कि मैंने कोई बात उठा रखी है? शायद आपको खबर न हो, कि आपके भ्राताने एक बड़ा सुन्दर कार्य अपने हाथमें लिया था। उन्होंने वल्लभ-दासजीके साथ समाजके सुधारकी चेष्टा करनी आरम्भ की थी। उन्होंने कई बार यहाँ व्याख्यान भी दिये थे; परन्तु दुःखकी बात है, कि उनकी बातोंपर किसीने ध्यान न दिया और लोग उन्हें हीन दृष्टिसे देखने लगे। बहुतसे मनुष्योंने उनका कुछ तिर-स्कार भी किया था। सम्भव है, कि इसी कारणसे वे कहीं चले गये हैं, कि किसी दूसरे ही स्थानसे यह सुधारका कार्य आरम्भ करेंगे।"

रघुनन्दनने कहा,—"कुछ भी हो, उसका इस तरह एकाए
गायब हो जाना तो अच्छा नहीं हुआ। उसके यहाँसे चले जाने
यह कोई पर्य्याप्त कारण भी नहीं है। मैंने तो आजतक उ
कहा नहीं।"

कमलेश्वरने कहा,—"शायद कोई दूसरा ही कारण हो
अभी इन दोनोंमें इस तरह बातें हो ही रही थीं, कि
समय शिवनन्दन आता हुआ दिखाई दिया।

शिवनन्दनको देखते ही रघुनन्दनकी आँखोंसे आँसू
पड़े। उसने दौड़कर अपने भाईको गलेसे लगा लिया। इस
रघुनन्दनकी आँखोंसे प्रबल वेगसे आँसुओंकी धारा ब
थी; परन्तु शिवनन्दनमें इस प्रेमका अभाव दिखाई देता था

कमलेश्वर भी एकाएक शिवनन्दनको देखकर अकचका
उसने भी आश्चर्यसे पूछा,—"तुम कहाँ चले गये थे ?"

परन्तु शिवनन्दनने उसके प्रश्नका कोई उत्तर न दे,
न्दनकी ओर देखकर कहा,—"पिताजीका कब स्वर्गवास
गया।"

रघुनन्दनने कहा,—"हा! अन्तिम समयमें तुम्हें न दे
पिताजीको कितना कष्ट हुआ है, सो क्या बताऊँ? तु
यहाँसे चले गये थे ?"

शिवनन्दन रूखे स्वरसे बोला—"जहाँ अपना आदर न
रहकर क्या होगा ?"

शिवनन्दनने इस नीरसतासे यह उत्तर दिया, कि रघुन

हृदयमें बड़ी चोट पहुँची। उसने तुरत ही नम्रता-पूर्वक कहा,—
ले भाई! मैंने तो तुम्हें कभी कुछ कहा नहीं।"

शिवनन्दनने कोई उत्तर न दिया। बोला,—"ये बातें पीछे होंगी।"

इतना कहकर वह भीतर चला गया। इधर कमलेश्वर भी ठकर चला गया।

रघुनन्दन वहाँसे उठकर भीतर गया। इस समय रघुनन्दन-ी माता एक ओर रो रही थीं, उसकी स्त्री एक ओर तथा रूपावती एक खम्भेके सहारे खड़ी होकर आँसू बहा रही थी। रन्तु शिवनन्दनकी आँखोंमें आँसुओंका नाम न था। वह कुछ कुचाया हुआ एक ओर खड़ा था।

उसको इस तरह खड़े देखकर रघुनन्दनने कहा,—"भाई! हरसे आ रहे हो, जाओ, स्नान इत्यादि कर भोजन करो। अब स तरह रोनेसे क्या लाभ है? आज हमलोगोंका बड़ा सौ-भाग्य है, कि तुम लौट आये। हमलोग कितने चिन्तित थे?"

शिवनन्दनने रूखे स्वरमें कहा,—"कितने चिन्तित थे, सो अच्छी तरह समझता हूँ। अस्तु, उन बातोंपर अभी विचार रनेकी आवश्यकता नहीं है।"

इतना कहकर शिवनन्दन स्नान करने चला गया। स्नान जनसे निश्चिन्त होकर जिस समय फिर सब एकत्र हुए, उस मय रघुनन्दनने पूछा,—"अच्छा, यह तो बताओ, कि तुम इतने नोंतक कहाँ थे और एकाएक इस घरको बिना किसीसे कहे ने त्यागकर चले जानेका कारण क्या है?"

शिवनन्दन बोला,—"इन लल्लों-चप्पोंकी बातोंसे अ
लाभ नहीं है। मुझे यह पक्का विश्वास है, कि इस घरमें
रहना नहीं हो सकता। क्योंकि जहाँ अपना आदर न
रहनेकी क्या आवश्यकता है?"

रघुनन्दनने दुःखसे कहा,—"परन्तु तुम्हारी ऐसी
क्यों हो गई?"

शिवनन्दनने कहा,—"इस घरके मनुष्योंके व्यवहारसे।
अधिक कहनेकी अब कोई आवश्यकता नहीं है। पिताके
वासकी मुझे परसों खबर मिली है। आज मैं इसी लि
हूँ, कि अपनी गृहस्थी भी यहाँसे ले जाऊँ।"

रघुनन्दन तथा उसके परिवारवाले यह सुनकर अ
गये। यह क्या? कहाँ तो पिताकी मृत्युके कारण वे
हो ही रहे थे, तिसपर शिवनन्दनके व्यवहारने उनके हृदय
भी भीषण आघात पहुँचाया। रघुनन्दनने बहुत तरहसे
उसे समझाया। शिवनन्दनकी माताने भी बहुत कुछ सम
परन्तु शिवनन्दनने किसीकी बातपर कुछ ध्यान न दिया।

रघुनन्दन मन ही मन सोचता था, कि क्या कारण
शिवनन्दन एकाएक इतना अप्रसन्न हो गया है; परन्तु
बात उसकी समझमें न आती थी। शिवनन्दनका व्यवहा
उसके हृदयकी कठोरता देख देखकर कभी कभी उसे सन्दे
लगता था, कि शिवनन्दन दुराचारी तो न हो गया है;
वह अच्छी तरह जानता था, कि सङ्गतिका फल अवश्य

और कमलेश्वरकी सङ्गतिमें उसका दुश्चरित्र हो जाना कोई आश्चर्यकी बात न थी। इसी लिये वह चिन्तामें पड़ा हुआ था, कि क्या करना चाहिये?

उधर चम्पावती भी एक ओर खड़ी खड़ी रो रही थी। उसके हाव-भावसे मालूम होता था, कि वह इस घरको त्याग कर जाना नहीं चाहती।

कुछ क्षण बाद रघुनन्दनने कहा,—"भाई! तुम कुछ नहीं बताते, कि हमलोगोंसे क्यों अप्रसन्न हो रहे हो? अस्तु तुम्हारी इच्छा। अब तुम बराबरके हुए, तुमसे कुछ विशेष तो कह नहीं सकता।"

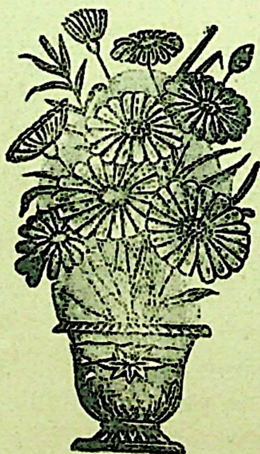
शिवनन्दनने कहा,—"मैं भी आप लोगोंसे विशेष कुछ नहीं चाहता। पिताका देहान्त हो ही चुका है, अब आपको जो कुछ देना हो, मुझे हाथ उठाकर दे दीजिये। मैं उसीमें सन्तुष्ट हो रहूँगा।"

रघुनन्दनने फिर भी बहुत कुछ समझाया कहा,—"जगमें मेरी तुम्हारी दोनोंको ही हँसी होगी। लोग कहेंगे, कि पिताकी मृत्यु हुए अभी दो मास भी न हुए, कि दोनों भाई अलग हो गये। भाई! पिता कितनी सम्पत्ति छोड़ गये थे और उनमें कितना खर्च हुआ है, सो तुम देख लो और फिर तुम्हारी जो इच्छा हो सो ले लो। मैं नहीं रोकूँगा।"

परन्तु शिवनन्दनने एक न सुनी दूसरे ही दिवस शिवनन्दनने हिसाब किताब देख लिया। पिताकी अन्येष्टिमें जो कुछ खर्च

हुआ था, वह देनेके लिये वह तय्यार न था, वह कहता
वृथाके आडम्बर हैं। अस्तु, रघुनन्दनने बात दबी दबाई
इच्छासे उसके कथनानुसार ही बटवारा कर दिया।

व्रजेन्द्रनारायणके दो मकान थे। एक शिवनन्दनको
दूसरा रघुनन्दनको। रघुनन्दन उसीमें रहा, जिसमें उसके
थे। शिवनन्दन जबर्दस्ती अपनी स्त्रीको साथ ले दूसरे
चला गया। प्रियम्वदा भी उनके साथ ही गईं; क्योंकि
बहूपर उनकी विशेष प्रीति थी।



तेरहवाँ परिच्छेद ।

रघुनन्दनका प्रवास ।

रघुनन्दन तथा शिवनन्दनमें बटवारा हुए कई दिवस हो चुके थे। रघुनन्दन दुःखित चित्तसे बाहर बैठकखानेमें बैठा हुआ था। उसके सामने ही राधाकृष्णकी एक तसीर लटक रही थी। उसकी ओर दुःखित चित्तसे देख देखकर वह कभी कभी प्रणाम भी कर देता था। इस समय उसके चेहरेसे चिन्ताकी झलक टपक रही थी। इसका कारण यह था, कि एक तो उसके पिता कुछ विशेष सम्पत्ति छोड़ ही न गये थे, दूसरे जो कुछ बचा था, उसका भी आधा अंश शिवनन्दनको दे देना पड़ा था। अन्त्येष्टि-का सब खर्च उसके माथे ही पड़ा था, इस लिये यह खर्च बाद देकर उसके पास बहुत कम रकम बच गई थी और उसे इस बातकी चिन्ता आ पड़ी थी, कि गृहस्थीका भरण-पोषण किस प्रकारसे किया जाये। दूसरे शिवनन्दनके अलग हो जानेके कारण उसकी बड़ी बदनामी हुई थी। लोग कहते थे, कि बाबू ब्रजेन्द्रनारायणको मरे अभी छः मास भी न हुए, कि बड़े भाईने छोटेको निकाल बाहर किया। बिचारा रघुनन्दन अपने भाईकी किसीसे निन्दा न किया चाहता था, इसलिये वह सहर्ष इन कटु-क्तियोंको सुनता और सहन कर लेता था।

कुछ भी हो, वह अच्छी तरह समझता था, कि यह समय

बड़ा नाजुक आ गया है। साथ ही उसे इस बातकी भी बड़ी
थी, कि कहीं शिवनन्दन स्वतन्त्र होकर दुराचारी न हो
यद्यपि जबसे शिवनन्दन अलग होकर दूसरे मकानमें चल
तबसे वह कभी रघुनन्दनसे मिलनेके लिये न आया;
रघुनन्दनका जी न मानता था। इसलिये वह बीच बीचमें
अपनी मातासे भेंट कर आता था। परन्तु शिवनन्दन सङ्कोच
या न जाने किस कारणसे उससे कभी मिलता न था।

इन्हीं सब चिन्ताओंमें रघुनन्दन अपने बैठकखानेमें बैठा
था। उसके सामने ही कानूनकी कुछ किताबें खुली हुई
वह रह रहकर कभी पुस्तक और कभी सामनेके राधा
चित्रकी ओर देखता और फिर पढ़ने लगता था।

इसी तरह पढ़ते हुए, रघुनन्दनको थोड़ी ही देर हुई थी
इसी समय लीलावती वहाँ आई। रघुनन्दनने एक बार
उठाकर उसकी ओर देखा, फिर चुप रह गया।

लीलावतीने कहा,—"मैं देखती हूँ, कि आप बराबर ही चि
रहा करते हैं, इस तरह चिन्तित रहनेसे तो काम न चलेगा।"

रघुनन्दन बोला,—"चिन्ताकी बात ही है।"

लीलावतीने कहा,—"यह तो मैं समझती हूँ; परन्तु
तरह आपके पठन-पाठनमें बड़ा व्याघात होता है। इस प्र
हमारे दुःख कभी दूर न होंगे, जो होना था सो तो हो ही गया

रघुनन्दनने कहा,—"मेरा भी यही विचार है। मैं अब
लत पढ़नेके लिये कलकत्ते जानेका विचार कर रहा हूँ;

ड़ी चिन्ता तो यह है, कि यहाँ तुमलोगोंको किसके भरोसे छोड़ जाऊँ ?"

लीलावतीने कहा,—"मैं भी अभी अभी यही कहने आपके ास आयी हूँ। आपका यह छः मासका समय वृथा ही बीत या है। यद्यपि आपके चले जानेसे हमलोगोंको कष्ट अवश्य ोगा; परन्तु क्या किया जाये, खर्च घटानेकी इच्छासे मैंने इधर ासी न रखी थी; परन्तु अब मोहनीको रख लेना ही उचित ान पड़ता है। हम तीनों किसी तरह अपने दिवस काट लेंगी; रन्तु आप अब अपना समय नष्ट न करें।"

रघुनन्दनने कहा,—"इसके लिये मातासे एक बार पूछ लेना रमावश्यक है। मैं अभी जाता हूँ।"

उसी दिवस रघुनन्दनने अपनी इच्छा अपनी मातापर प्रकट ी। प्रियम्वदा बाईने सुनकर कहा,—"बात तो अच्छी है; परन्तु ावनन्दन (छोटी बहूको दिखाकर) उसे तो वहाँ जाने नहीं ा, इस लिये मैं उसे अकेली छोड़कर वहाँ न जा सकूँगी। तू पना प्रबन्ध करके जा।"

रघुनन्दन माताका यह उत्तर सुनकर अत्यन्त निराश हुआ। सका कारण था। एक तो प्रियम्वदा बाई लीलावतीसे पहलेसे अप्रसन्न थीं। दूसरे इतने दिनोंमें शिवनन्दनने और भी शिका- ा कर उनके कान भर दिये थे। इसी कारणसे उन्होंने ऐसा त्तर दिया था। अतः लाचार हो, वह वहाँसे दुःखित चित्तसे लौट आया।

घर आकर उसने लीलावतीसे सब हाल कहा।
लीलावती तथा जगदम्बा दोनों ही अत्यन्त दुःखित हुईं।
अब कोई दूसरा उपाय न था। अतः लीलावतीने कहा,—
हम लोगोंको ईश्वरके भरोसे छोड़कर जाइये। हमलोग
लेंगी। मोहनी है ही। उससे हमलोगोंको बहुत कुछ
रहेगा।"

यही स्थिर हुआ। उसी दिवस अपने एक बन्धु गोविन्द
यणसे घरकी देख-रेख करनेकी प्रार्थना कर रघुनन्दन
जानेके लिये तय्यार हो गया।"

जाते समय अपने कमरेमें लगी हुई राधाकृष्णकी
ओर देखकर बोला,—"प्रभो ! मैं तो जाता हूँ ; परन्तु
अबलाओंका भार तुमपर है। तुम जगतके पालक हो,
इनपर किसी प्रकारकी विपत्ति न आये।"

इतनी प्रार्थनाकर भक्ति भावसे उस मूर्त्तिको प्रणाम
हुआ, रघुनन्दन साश्रु नयनसे कानून पढ़नेके लिये घरसे
हुआ।



चौदहवाँ परिच्छेद ।



मोहनी ।

रघुनन्दनके चले जानेपर लीलावती एक बार तो व्याकुल हो ठी ; क्योंकि आजतक इस तरह स्वतन्त्र रूपसे रहनेका उसे भी काम न पड़ा था । अतः उसे नाना प्रकारकी चिन्ताओंने आ रा ; परन्तु उसने अपना साहस न छोड़ा और बड़ी सावधान- ासे सब काम करने लगी । यद्यपि उसे एक प्रकारसे धनका ड़ा अभाव हो रहा था, और इसी कारणसे गृहस्थीके सब कार्य ह तथा जगदम्बा दोनों ही कर लिया करती थीं ; तथापि इस मय रघुनन्दनके चले जानेके कारण उसने मोहनीको रख लेना ी आवश्यक समझा और दूसरे ही दिवस उसे बुलाकर नौकर ख लिया । इस तरह बड़ी सावधानतासे ननद भौजाई दोनों ी वहाँ रहने लगीं ।

इस स्थानपर मोहनीका कुछ परिचय दे देना भी आवश्यक । इसमें कोई सन्देह नहीं, कि मोहनी व्रजेन्द्रनारायणके समय- ी पुरानी दासी थी, उसके सामने ही रघुनन्दनका विवाह हुआ ा और लीलावती पुत्र-वधूके रूपमें इस घरमें आई थी ; परन्तु ्रेयम्वदासे न पटनेके कारण वह नौकरी छोड़कर चली गई थी, बसे उसने फिर,कहीं नौकरी न की । उसकी अवस्था इस समय गभग पैंतीस वर्षके थी । वह कहती थी, कि वह बालापनमें ही

विधवा हो गई थी; परन्तु माथेमें सिन्दूरके अभावके अतिरि
कोई वैधव्यका चिन्ह उसके शरीरपर न दिखाई देता था;
साथ ही एक बात यह भी थी, कि उसके चरित्रपर सन्दे
का कोई भी कारण आजतक किसीको न मिला था। यही
था; कि उसे कोई कुछ कह न सकता था। काम-काजमें
बड़ी सफाई थी, बातोंसे बड़ी सहानुभूति टपकती थी।
छोड़ देनेपर भी बाबू व्रजेन्द्रनारायणकी मृत्युका समाचार
समय उसे मिला, उसी समय उनके घरपर आकर वह इत
कि देखनेवालोंको दया आ गई और स्वयं व्रजेन्द्रनारायण
प्रियम्वदाको समझा बुझाकर उसे शान्त करना पड़ा। आ
अतिरिक्त उनकी अन्त्येष्टि तकके कृत्यों तथा काम-काज
किसीके बुलाये वह खूब परिश्रम कर गई। इसके बाद
उसने कभी किसी प्रकारका सम्पर्क न रखा।

ये ही कारण थे, कि मोहनीपर उस घरके मनुष्योंका
था और लीलावतीने भी मोहनीको अपने यहाँ रख लिया

एक दिन दोपहरका समय था। लीलावती तथा
एक कमरेमें बैठी हुई थीं। इसी समय मोहनी अपने का
से निश्चिन्त होकर वहाँ आ बैठी। आज कई दिवसोंसे
का कोई पत्र नहीं आया था, इस लिये सब चिन्तित हो
अतः मोहनी भी वहाँ जा पहुँची और सबके साथ स
प्रकट करती हुई बोली,—"हाँ, मर्दोंका कलेजा भी कैसा
होता है। दो दो औरतें; घरमें मर्द कोई नहीं, तिसपर

कई दिन हुए कोई पत्र नहीं भेजा। अजी बहू! कलकत्ता बड़ी खराब जगह है। राम! राम! कहते लज्जा आती है, वहां जाकर सुना है, मर्द सब खराब हो जाते हैं।"

लीलावतीने कहा;—"वे अवश्य ही किसी न किसी झमेलेमें फँस गये होंगे। इसी लिये अबतक पत्र न भेज सके हैं।"

मोहनीने कहा,—"बहू! तुम अभी क्या जानो! अभी घरसे कभी पैर तो बाहर निकले नहीं।"

लीलावतीको उसकी बात बुरी लगी। बोली,—"क्या कहती हो? चुप रहो, उनके सम्बन्धमें ऐसी बात कभी मुँहसे न निकालनी।"

मोहनी बोली,—"मुझे क्या मतलब है, बहू! सब आप ही आगे चलकर मालूम हो जायेगा?"

लीलावतीने कुछ चिढ़कर कहा,—"देखा जायगा। तुम्हें इन बातोंसे क्या मतलब है?"

मोहनी मुँह बनाकर वहांसे उठ गई। थोड़ी देरतक इधर उधर घूमती रही। इसके बाद फिर वहाँ आकर बैठ गई। परन्तु लीलावतीने उसकी ओर कुछ ध्यान न दिया, मालूम होता था, कि मोहिनीकी बात उसे बुरी लगी थी। जब लीलावती बहुत देरतक कुछ न बोली; तब तो मोहनीके पेटमें चूहे कूदने लगे। इस बार उसका ध्यान जगदम्बापर गया। जगदम्बा वहीं बैठकर एक जाकिट सी रही थी। उसकी ओर देखकर मोहिनी बोली,—"यह जवानी और यह कष्ट! मुझसे तो इनका यह कष्ट नहीं देखा जाता।"

लीलावतीने एक बार तिरछी दृष्टिसे उसकी ओर देख
चुप रह गई।

मोहनीने देखा, कि यह बात भी उसकी जमी नहीं।
लिये उसने मुस्कुराते हुए कहा,—"अच्छा बहू! कमलेश्व
का विवाह होनेवाला था न, सो क्या हुआ?"

लीलावती बोली,—"मुझे क्या मालूम। सुना, कि हो
है।"

मोहनी बोली,—"आह! ईश्वरने उन्हें धन-जन दोनों
है। जैसा ही रूप है, वैसा ही गुण है और उतना ही धन"

लीलावती बोली,—"तुझे कैसे मालूम हुआ? तू
जानती है?"

मोहनीने कहा,—"मुझसे कौन छिपा है? मैं सबको
हूँ। अभी तो उस दिन कहते थे, कि अब व्याह ही न क
कोई बड़ी लड़की तो मिलती नहीं।"

लीलावती बोली,—"तब क्या वे अब विवाह ही न क

मोहनीने कहा,—"सो क्या जाने, विधवा-विवाह
बहू, सो कौन जाने। मेरी समझमें तो कुछ आता नहीं।"

लीलावती बोली,—"क्या वे विधवा-विवाह करेंगे?"

मोहनीने कहा,—"क्या करेंगे, सो तो राम जाने।
आदमी हैं, उनकी बातें उन्हें ही शोभा देती हैं?"

जगदम्बा बीचमें ही बोल उठी,—"राम! राम!
क्या बात कहती हो, वे ऐसा कभी न करेंगे।"

मोहनीको अवसर मिल गया। बोली,—"तुम कैसे जानती हो ?"

जगदम्बा बोली,—"मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

अभी इन सबमें इस तरह बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय बाहरसे किसीने पुकारा।

मोहनी दौड़कर दरवाज़ा खोलने चली गई। प्रियम्वदा बाई आई थीं। अपनी सासको देखते ही लीलावतीने उठकर पैर छुए। जगदम्बाने कहा,—"माँ! तुम एक बार नित्य यहाँ आया करो। हमलोगोंका जी घबड़ाता है।"

प्रियम्वदाने लीलावतीको आशीर्वाद देकर पूछा,—"क्यों, रघुनन्दनकी कोई चिट्ठी आई है ?"

लीलावतीने तो कोई उत्तर न दिया, वह चुप रह गई; परन्तु जगदम्बा बोल उठी,—"नहीं मा! आज आठ दिन हो गये। कोई पत्र नहीं आया।"

प्रियम्वदाने कहा,—"इसका क्या कारण है ?"

जगदम्बा बोली,—"कुछ भी खबर नहीं मिली। शिवनन्दन भय्याके पास कोई पत्र आया है ?"

प्रियम्वदाने कहा,—"उसके पास क्यों आयेगा ? उसके पास पत्र ही भेजना रहता, तो क्या उसे दूधकी मक्खीकी तरह अलग कर देता। जहाँ चार बर्तन रहते हैं, वहाँ बजते ही हैं। वह छोटा भाई था, उसे किसी तरह मनाकर रखना था।"

लीलावती चुपचाप खड़ी होकर अपने सासकी बातें सुन रही

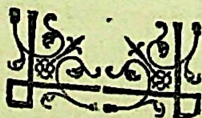
थी। परन्तु जगदम्बासे चुप न रहा गया। उसने कहा,— भय्याने तो कोई भी बात उठा न रखी। तुम भी तो सब थीं, किसका अपराध था। बटवारेमें भी तो बड़े भय्या हानि सहन करनी पड़ीं।”

प्रियम्वदा बोली,—“तो शिवनन्दनको ही क्या मिल वह विचारा तो आप दाने दानेके लिये मुहताज हो रहा है

जगदम्बाने कहा,—“यह क्या माँ! तुम्हारे सामने जितने जेवर थे, सब आधे आधे बाँट दिये गये। मकान बँट गया। जो कुछ जमीन थी, उसमें आधा हिस्सा ला बल्कि बाबूजीके श्राद्धका खर्च भी तो सब बड़े भय्याने ही इसी लिये तो भाभीके बहुतसे जेवर भी उन्होंने निकालकर नन्दन भय्याको दे दिये और अपने लिये कुछ भी न बताओ, किस कष्टसे हमलोगोंके दिन बीत रहे हैं।”

प्रियम्वदाने कहा,—“फिर इसके लिये मैं क्या करूँ लोगोंका भाग्य! तू तो वृथा यहाँ पड़ी-पड़ी कष्ट भोग रही

जगदम्बाने कोई उत्तर न दिया। चुप हो रही, इसी कुछ देरतक इधर उधरकी बातें होती रहीं, फिर प्रियम्वदा चली गई।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

अद्भुत प्रेयसी ।

रघुनन्दन खर्चके लिये बहुत थोड़े रुपये लेकर कलकत्तेके लिये रवाना हुआ था। उसने सोचा था, कि वहाँ चलकर लड़कोंके पढ़ानेका काम खोज लेंगे और किसी तरह अपना अध्ययन कार्य भी करते जायेंगे; परन्तु कलकत्ता जाकर उसे बड़ी कठिनाईमें पड़ना पड़ा। रुपयोंका अभाव तो था ही, साथ ही घरकी ओरसे भी दुश्चिन्ता लगी थी। इधर लड़कोंके पढ़ानेका कार्य शीघ्र मिलता न था। वह देखता था, कि सैकड़ों बी० ए० पच्चीस पच्चीस रुपये मासिकके लिये इधर उधर रेलमें, तारमें, डाकमें दरख्वास्तें देते फिरते हैं; परन्तु उन्हें शीघ्र नौकरी नहीं मिलती। दूसरे वह जहाँ जाता वहीं, उससे सवाल होता था, कि तुम्हारा कोई जान पहचानका मनुष्य है; परन्तु कुछ दिनोंतक कलकत्तेमें रहनेपर भी उसकी विशेष जान पहचान न थीं। बड़ी कठिनतासे पन्द्रह दिन बाद उसे १५) मासिकपर एक बालकको पढ़ानेकी जगह मिली। अब रघुनन्दनने अपना अध्ययन कार्य्य आरम्भ किया; परन्तु अपनी गृहस्थीकी चिन्ता उसे इस अध्ययन कार्यमें बड़ी बाधा पहुँचाती थी।

कलकत्ते जैसे शहरमें पन्द्रह रुपये मासिकमें किसी तरह भी खर्च चलना सम्भव न था। इस लिये रघुनन्दनने विचारा, कि उपार्जनका कोई दूसरा उपाय अवश्य करना चाहिये।

अतः वह अन्य बालक पढ़ानेका ही कार्य ढूँढने लगा,
कठिनतासे उसे एक कार्य और भी मिल गया ; परन्तु इस
नन्दनका इतना समय लग जाता था, कि उसे अपने पढ़ने
बहुत ही कम समय मिलता था । इस समय उसे मासिक
रुपयेकी आमदनी थी और इसीमें अपना व्यय निर्वाह
साथ ही उसे कुछ रुपये लीलावतीको भी भेजने पड़ते थे।

परन्तु रघुनन्दनका शरीर ऐसे उपादानोंका न बना
वह विचलित हो जाता । वह सबेरे तथा सन्ध्याके स
बालकोंको पढ़ाता और रात्रिके दो दो बजेतक असाधारण
कर अपना पाठ पढ़ता था । उसने अपना खर्च इतना घट
अपनी रहन-सहनमें इतनी सादगी ले आया, कि जिस स्थान
विद्यार्थियोंको तीस पैंतीस रुपये मासिकसे कममें किसी
खर्च न चलता था, वहीं वह २०) मासिकमें बड़ी सरलतासे
खर्च चला लेता था; परन्तु एक कठिनाई अवश्य ही उसके
थी । इस समय जिस मकानमें वह रहता था, उसमें
कतिपय विद्यार्थी रहते थे । वहाँ उसे खर्च भी विशेष पड़
और पठन-पाठनमें भी अनेक असुविधायें होती थीं ;
उन्हें उस स्थानके नियमानुसार ही चलना पड़ता था ।

इस लिये रघुनन्दनने यह उचित समझा कि वह
छोड़ दिया जाय और इसी विचारके अनुसार उसने एक म
नीचेका एक बैठकखाना भाड़ेसे ले लिया और अपने एक
मित्रके साथ, जो सब तरहसे रघुनन्दनकी सहायता किया

ा, उसी मकानमें चला आया। यह मकान हरिदास नामी
क मनुष्यका था और वह अपनी स्त्रीके साथ उस मकानमें ही
हते थे। इनके अतिरिक्त उस मकानमें और कोई न था। ये
परवाले तलेमें तथा रघुनन्दन अपने मित्रके साथ निचले खण्ड-
एक बैठकखानेमें रहता था।

जिस समयकी बातें हम लिख रहे हैं, उस समय रघुनन्दनको
स मकानमें आये लगभग तीन मासके बीत चुके थे। इन तीन
ासोंमें उसका तथा हरिदासका परिचय बहुत कुछ बढ़ गया
ा। साथ ही कितनी ही बार रात्रिके समय उसने हरिदासके
मरेसे रमणी-कण्ठसे निकले हुए मधुर सङ्गीतकी मनोहर ध्वनि
ुनी थी और पता लगानेपर स्वयं हरिदासने कहा था, कि उनकी
्त्रीको गाने-बजानेका बड़ा शौक है और वह अच्छा गाती हैं।

एक दिन रात्रिका समय था, रघुनन्दन अभी अभी अपने एक
ित्रको पढ़ाकर आया था। उसका सहपाठी अभीतक लौटकर
हीं आया था। अतः ज्योंही उसने दरवाजा खोला, त्योंही उसे
क पत्र पड़ा हुआ दिखाई दिया। पत्रके लिफाफेपर किसी स्त्रीके
ाथके लिखे हुए टेढ़े-मेढ़े अक्षर थे। लीलावतीके अक्षर वह अच्छी
रह पहचानता था, इस लिये यह समझनेमें उसे अधिक विलम्ब
हुआ, कि यह पत्र किसी दूसरी ही रमणीका लिखा हुआ है।

इसके बाद ही वह बड़ी द्विविधामें जा पड़ा। पत्र खोलना
ाहिये या नहीं—वह कुछ भी निश्चित न कर सकता था। एक
ोर कौतूहल उसे पत्र खोलनेका आग्रह कर रहा था, तो दूसरी

ओर विवेक कहता था, कि किसी अपरिचित रमणी
खोलनेकी आवश्यकता नहीं। साथ ही मन यह भी क
कि कहीं यह पत्र तुम्हारी माताने किसी दूसरोसे लिख
नहीं भेजा है ; परन्तु तुरन्त ही यह भी उत्तर मिल
कि शिवनन्दन तथा छोटी बहूके रहते, माता दूसरे
पत्र लिखवाकर क्यों भेजेंगी। कुछ देरतक रघुनन्
द्विविधामें पड़ा रहा; परन्तु उसका कौतूहल क्रमशः बढ़ता
स्पष्ट अक्षरोंमें उस लिफाफेपर रघुनन्दनका पता और उ
लिखा था। रघुनन्दन बहुत देरतक सोचता रहा;
भी स्थिर न कर सका, कि यह पत्र किसने भेजा है।
ज्यों वह विचारता गया ; त्यों त्यों कौतूहल भी बढ़त
अन्तमें कौतूहलकी ही विजय रही और रघुनन्दनने अ
दबाव डालकर वह पत्र खोल डाला ; परन्तु पत्र पढ़
आश्चर्य्यका ठिकाना न रहा—पत्रमें लिखा था :—

प्रिय बन्धु !

इस पत्रको लिखावटसे ही मालूम हो जायगा, कि
हूँ ; परन्तु मैं कौन हूँ—यह परिचय देनेके लिये अभी
नहीं हूँ। समय पाकर आपको स्वयं ही मेरा परिचय
जायगा ; परन्तु मैं इतना अवश्य बता दूँगी, कि मेर
आन्तरिक अनुराग है—मैं आपसे प्रेम चाहती हूँ; किन्तु
इसमें पाप नहीं है, मेरे मनमें स्वार्थ-परता अथवा विला
नहीं है। केवल एक इच्छा है और वह यही कि आ

र और अनुरागका वैसा ही प्रतिदान दें। मैं आपकी सुन्दरता, पकी सच्चरित्रता, आपकी सरलता और मिष्ठ-भाषणपर मुग्ध । मेरा मन चाहता है,—हृदयमें प्रवल इच्छा रहती है; अहर्निश ह इच्छा मानो मेरे हृदयमें दहकती हुई आगकी तरह जला करती कि घण्टे दो घण्टे आपसे वार्त्तालाप कर अपना हृदय तृप्त रूँ, इच्छाभर आपका दर्शन करूँ। इसके लिये कोई चिन्ता नहीं, मैं किसी पुरुषके अधीन हूँ। अवश्य हूँ; परन्तु यह अधीनता ा मुझे इस बातके लिये बाध्य कर सकती है, कि किसीसे न्धुता न करूँ अथवा किसीको अपना मित्र न बनाऊँ? नहीं, योंकि ईश्वरने सबका हृदय स्वतन्त्र बनाया है। आत्मा सबका वतन्त्र है, वह पराधीन नहीं हो सकता। अतः इसमें कोई सन्देह हीं; कि शरीरके सम्बन्धमें मैं अवश्य पराधीना हूँ; परन्तु मेरा न और आत्मा बिल्कुल स्वतन्त्र है। अतः मैं आपसे कोई शारी-क सम्बन्ध तो स्थापित नहीं किया चाहती। चाहती हूँ, केवल का; क्योंकि स्नेह या बन्धुताका सम्पूर्ण अङ्ग हृदय है। अतः पसे यह सम्बन्ध स्थापित करना आपके लिये भी अनुचित नहीं सकता।

आप एक बात और भी ध्यानमें रखें—आप इस पत्रका उत्तर या न दें; परन्तु मेरी इच्छा, अभिलाषा या मनोकामनाके को रोक देना कोई साधारण काम नहीं है—मैं अपनी इच्छा वश्य पूरी करूँगी। चाहे इसके लिये आप मुझे धिक्कारें, मेरी पेक्षा करें अथवा मुझे दुराचारिणी ही समझ लें; परन्तु मेरी

इच्छाके वेगको कोई रोक नहीं सकता और आशा है,
भी न रोक सकेंगे। मैं सदा आपपर दृष्टि रखती हूँ। आ
दूर रहनेपर भी निकट ही हैं। आपकी प्रत्येक बात, प्रत्ये
प्रत्येक कार्यपर मेरी दृष्टि है। इसके उत्तरकी भी आव
नहीं है, आपके व्यवहारसे ही मैं जान लूँगी, कि आपं
इच्छा है ?

आपकी—एक पग

रघुनन्दन वह समूचा पत्र पढ़ गया। पढ़कर उस
विचित्र ही अवस्था हो गई। वह मन ही मन सोचने ल
कैसा काण्ड है ? यह कौन स्त्री है ? न तो मैं इसके आ
चानता और न इससे मेरी कभी की जान पहचान ही है।
यह है कौन ? जो इस तरह अयाचित रूपसे प्रेमको
और प्रतिदान लेनेके लिये तय्यार हो गई है। वह मन
सोचने लगा—उपन्यासोंमें ऐसी घटनायें कितनी ही बार
परन्तु प्रत्यक्षमें यह पहला ही अवसर है। कुछ भी हो, रघु
मस्तिष्कमें एक प्रकारकी चिन्तासी उत्पन्न हो गई—वह
लगा, कि यह मानवी कौन है ? इसका क्या उद्देश्य है।
उसने ऐसा लिखा है ; परन्तु उसकी समझमें कुछ भी न
अतः वह चिन्तित भावसे एक स्थानपर बैठ गया।

कुछ देर बाद ही उसका बन्धु जानकीशरण आ
आज रघुनन्दनको कुछ चिन्तित देखकर उसने पूछा—"भा
तुम इतने चिन्तित क्यों हो रहे हो ?"

रघुनन्दन विचारमें पड़ गया। पत्र उसको दिखाना उचित है या नहीं। एक स्त्रीने निर्लज्ज बनकर उसके पास पत्र भेजा है। अब उस पत्रको किसी अन्यको दिखाकर उसका भेद दूसरेपर खोलना उचित है या नहीं; परन्तु अन्तमें उसने यही स्थिर किया, कि पत्र दिखाकर इनसे इस विषयमें परामर्श लेना ही उचित है। उसने हँसते हँसते वह पत्र निकालकर जानकीशरणके हाथमें दे दिया। जानकीशरणने भी बड़े कुतुहलसे वह पत्र आद्योपान्त पढ़कर कहा,—"बात तो बड़ी मजेदार है। यह अयाचित दान कैसा?"

रघुनन्दनने कहा,—"बात ठीक नहीं है। यह स्त्री कौन है, सो भी कुछ मालूम नहीं होता।"

जानकीशरणने कहा,—"तुम उसे जानते हो या न जानते हो; परन्तु वह तो तुम्हें अच्छी तरह जानती है।"

रघुनन्दनने कहा,—"परन्तु बात तो चिन्ताकी है।"

जानकीशरणने कहा,—"तुम्हें चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? अभी तो यह प्रेमका श्रीगणेश ही हुआ है।"

रघुनन्दन चुप हो रहा। उसके चित्तमें एक प्रकारकी चञ्चलतासी उत्पन्न हो रही थी।

जानकीशरणने भी इस विषयपर विशेष तर्क-वितर्क करना उचित न समझा। उनकी इच्छा थी, कि इस विषयको योंही दबा दिया जाये, इसी लिये वह उठकर चला गया। इधर रघुनन्दन भी अन्यमनस्क भावसे अपने कार्यमें लगा।

———

सोलहवाँ परिच्छेद।

संगतिका फल।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि सङ्गतिका फल अवश्य होता है। अतः बड़े आदमियोंकी सङ्गतिमें रहनेके कारण शिवनन्दनका खर्चका अभ्यास पहलेसे ही बढ़ गया था। कपड़े-लत्ते, सभ्यता और फैशनपर खयाल हो ही गया था, साथ ही अधिक धन हो या न हुआ हो, बड़े आदमियोंका भूषण ऋण भी अवश्य हो गया था और वह भी अपने मित्र कमलेश्वरका, जिसे ऋण समझनेपर भी वह कुछ न समझता था। यद्यपि उसने कमलेश्वरका ऋण चुकानेकी इच्छासे ही अपने भाईसे बटवारा किया था परन्तु जिस समय जमीन बेचकर नक्द रुपये शिवनन्दनने लिये, उस समय हाथमें रुपये आते ही, फिर बड़े आदमीका भूत सवार हो गया और शिवनन्दन उसी प्रकारसे रुपये खर्च करने लगा, जैसा कि कमलेश्वरके साथ करता था। इसमें एक और भी विशेषता आ गई। अर्थात् पहले तो रुपये मिलनेका कार्य कमलेश्वरके वशमें था परन्तु इस बार किसीसे कुछ पूछनेकी आवश्यकता न थी। अतः जमीन बेचकर आये हुए रुपयोंसे कितने ही व्यसन खरीद लिये गये। उन व्यसनोंका दिग्दर्शन कराना हमारे इस कथा-भागका उद्देश्य नहीं है। सारांश यह कि शिवनन्दनके पिता जैसे सात्विक, आचारवान, सच्चरित्र

कर्त्तव्य-निष्ठ थे, शिवनन्दन उसके एकदम नहीं तो अधिकांशमें विपरीत हो गया ।

पानीके बुलबुलेकी तरह वह धन स्वाहा हो गया । सुधारका कार्य भी बन्द हुआ, सुधार वास्तवमें शिवनन्दनको अपना करना उचित था ; क्योंकि यह सिद्धान्त है, कि स्वयं आदर्श बने बिना दूसरेपर केवल बातोंकी भरमारका प्रभाव नहीं डाला जा सकता । अबतक तो कमलेश्वरने रुपयेका तकाज़ा न किया था; परन्तु अब देखा, कि शिवनन्दनने न तो सुधार ही अपने घरसे आरम्भ किया और न पिताकी सम्पत्तिका बटवारा कर लेनेपर भी अबतक उसका ऋण ही चुकाया तब तो वह झल्ला उठा । उसने पहले तो साधारणतः सीधा-सादा तकाज़ा आरम्भ किया, इधर शिवनन्दनकी ओरसे वादेपर वादे होने लगे । परन्तु किसी भी वादेपर रुपये न पहुंचे, लाचार कमलेश्वरने जमादारोंका तकाज़ा कर रुपये वसूल करनेकी आज्ञा दे दी ।

इधर व्यसनोंने दरिद्रता पैदा कर दी तो दरिद्रताने कलह । जब जमादारोंने तकाजेके लिये चक्कर लगाना आरम्भ किया, तब प्रियम्वदा बाई समझीं, कि शिवनन्दनने जो यह बात कही थी, उसने दूकान कर ली है, वह बिलकुल ही भूल थी । अतः उन्होंने भी अपना रूख बदला । एक दिन शिवनन्दनको बहुत सी बातें सुनाईं । इधर चम्पावती दुःखसे अपने आँसू बहाने लगी ; परन्तु उपाय कोई नहीं था । इधर घरका खर्च चलना कठिन हो गया । शिवनन्दनका मिजाज कुछ तो गर्म था ही; इस तरद्दुद और

चिन्ताने तथा नित्य प्रतिकी खटपटने उसमें और भी आ[illegible] काम दिया। एक तो तकाजेके भयसे उसके रहनेका पता [illegible] रहता, घर आता भी तो कभी अपनी स्त्रीपर गरमाता तो अपनी मातापर। अतः रुपये हाथमें आनेपर जो शान थी हवा हो गई। हाथ आई कलह!

परन्तु मसल मशहूर है, कि रस्सी जल जाती है पर [illegible] ऐंठ न नहीं जलती। साथ ही अभ्यास भी तो एक दूसरी [illegible] बन जाता है। शिवनन्दनका इतने दिनोंमें जो अभ्यास [illegible] था, उससे इस अवस्थामें भी वह सम्हलकर चलना नहीं [illegible] था, और धन हाथमें आते ही स्वाहा हो जाता था। [illegible] बाईको आजतक कभी खर्च-वर्चका टोटा न पड़ा था; परन्तु प्रत्येक कार्यमें उन्हें कष्ट होने लगा। समयपर वेतन न [illegible] कारण दास-दासी चले गये। इधर शिवनन्दन भी दो दो [illegible] तक घरसे गायब रहने लगा। कमलेश्वरका जमादार आता लौट जाता था।

एक दिन रात्रिके नौ बजेका अवसर था। शिवनन्दन अभी लौटकर बाहरसे आया था, न जाने किस कारणसे [illegible] मिजाज पहलेसे ही गरमाया था। इसी समय कमलेश्वर[illegible] जमादार आ पहुँचा। तकाज़ा करते करते उसने दो चार कड़ी भी कह दीं। अतः शिवनन्दन गरमाता हुआ भीतरसे निक[illegible] बात ही बातमें दोनोंमें झगड़ा हो गया। इसका समाचार कमले[illegible] श्वरको मिला। वह भी उसी समय वहाँ आ पहुँचा।

मुश्किलसे मुहल्लेवालोंने बीच-बचाव कर दिया ; परन्तु आज कमलेश्वर क्रोधित होकर बहुतसी बातें सुना गया।

चम्पावतीके शरीरपर हज़ार आठ सौ रुपयोंके जेवर थे। इनमें कितने ही ब्रजेन्द्रनारायणके बनवाये हुए थे और कितने ही उसके मायकेके। इधर जब सब रुपये खर्च हो गये, तो शिवनन्दनने धीरे धीरे उन जेवरोंपर हाथ लगाया। बिचारी चम्पावती अपनी ससुसे छिपाकर वह जेवर दे देने लगी। इस तरह उनमेंसे भी अधिकांश जेवर जिस समय साफ़ हो चुके थे, उस समय कमलेश्वरसे यह झमेला हुआ। झमेला होने बाद ही प्रियम्वदा बाईका ध्यान उन जेवरोंकी ओर गया और उन्होंने चम्पावतीको बुलाकर कहा,—"अपने पतिकी यह दुर्दशा देखी जाती है और यह नहीं होता, कि अपने जेवर निकाल कर दे दे। बच्चेकी इज्जत आबरू बनी रहेगी तो फिर बनवा देगा।"

बिचारी चम्पावती क्या उत्तर दे। वह चुपचाप खड़ी सुनती रही। जो जेवर वह नित्य-प्रति पहनो रहती थी, वही उसके शरीरपर थे। उसके अलावा सभो बिक चुके थे। अतः उत्तर देनेकी कोई जगह न थी।

चम्पावतीको मौन देखकर प्रियम्वदाने समझा, कि इन जेवरों-में अधिकांश उसके मायकेके हैं, उन्हें यह दिया नहीं चाहती। अतः उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर कहा,—"हां! अपने मायकेके जेवर हैं न! बीबी साहबाका उनपर जोर है। भला हमलोगोंका क्या अधिकार है, कि उसको काममें लायें।"

इस बार चम्पावतीकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़े; परन्तु
भी उसने कोई उत्तर न दिया। प्रियम्वदा बाईने फि
वह जेवरवाला बक्स माँगा; अब लाचार चम्पावतीने
लाकर रख दिया; परन्तु उसमें तो कुछ भी न था।
खाली देखकर प्रियम्वदा बाईको यही खयाल हुआ, कि
अपने मायकेके जेवर निकाल कर रख लिये हैं; क्योंकि
रालवाले तो उसके शरीरपर ही थे। अतः वे अत्यन्त क्रोधि
उठीं। उन्होंने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ पूछा भी; परन्तु
वतीने कुछ न कहा।

एकाएक उन्हें खयाल हो आया, कि कहीं शिवनन्द
जेवर भी तो बेच न डाले। यह खयाल आते ही उन्होंने
चम्पावतीके रोते हुए अश्रु पूर्ण मुखमण्डलकी ओर देखकर
—"क्या तुम्हारे मायकेके सब जेवर भी शिव ले गया?"

चम्पावती चुप रह गई। प्रियम्वदा बाईने अपना माथ
लिया। बाल खसोट लिये, कितनी ही भली बुरी बातें कहीं
दोनोंने मिलकर मेरा घर चौपट कर डाला, भाई भाईमें
कराया......न जाने क्या क्या और कितनी ही बातें वे
और इसी समय शिवनन्दन यदि न आ जाता तो और भी
ही बातें कहतीं; परन्तु शिवनन्दनने आनेके साथ ही
कहा,—"हाँ, हाँ, ले तो गया, तब क्या कर डालोगी?"
मन ही मन कुड़बुड़ा कर प्रियम्वदा बाई चुप हो गईं।

इधर कमलेश्वरका ऋण परिशोध करनेका जब कोई

न रहा, तब शिवनन्दनने चारों ओर यह कहना आरम्भ किया, कि उसके भाईने पिताका धन छिपा रखा और मुझे कुछ न दिया। मैं कहाँसे कर्ज चुकाऊँ। धीरे धीरे यही बात चारों ओर फैल गई। कमलेश्वरने भी सुना, कि शिवनन्दन ऐसा कहता है। इस बार उसने एक ही वारमें दो चिड़ियोंका शिकार करना स्थिर किया। उसने एक दिवस शिवनन्दनसे भेंटकर कहा,—"मैं तो अपना रुपया कदापि न छोड़ूंगा ; परन्तु यदि तुम एक काम करो तो मेरे रुपये भी पट जायें और तुम्हें अपने पाससे कुछ देना भी न पड़े।"

शिवनन्दनने कहा,—"इससे बढ़कर और कौनसी बात हो सकती है ?"

इसके बाद उन दोनोंमें और भी कुछ सलाह हुई और कमलेश्वरने शिवनन्दनको विदा कर दिया।



सत्रहवाँ परिच्छेद।



घर क्यों छोड़ा?

संसारका यह नियम है, कि मनुष्य स्वार्थके वशीभूत होकर कोई कार्य करनेके लिये अग्रसर होता है। अतः कमलेश शिवनन्दनसे क्या स्वार्थ था, यह हम पहले ही बता चुके हैं। शिवनन्दन केवल कीर्त्ति उपार्ज्जन रूपी स्वार्थके प्रलोभनमें पड़ समाज-सुधारके कार्यमें अग्रसर हुआ था। एक तो अपरि अवस्था, दूसरे थोड़ी शिक्षा, तीसरे संसारसे अनुभवहीन नन्दन जिस समय इस सुधारके कार्यमें अग्रसर हुआ, उस पहले तो वल्लभदासकी आश्वासनवाणीपर उत्साहित होकर काम करनेके लिये तय्यार हो गया; परन्तु जब वह एक व्याख्यान देनेके लिये खड़ा हुआ और उसने अपना मत किया, उस समय चारों ओरसे कितनी ही प्रकारकी आवाजें लगीं और अशिक्षित जनताने उसे नीचा दिखाया। यद्यपि वल्लभदासने इन आपदाओंसे उसे पहले ही सावधान कर था, तथापि उसका हृदय दहल गया और वह कुछ निरुत्सा हो गया; परन्तु पचास रुपये मासिकका एक पेसा प्र उसको दिया गया था, कि अपनी आत्माकी पुकारके विरु वह कार्य करता ही गया।

इसी तरह एक दिन वह व्याख्यान देकर लौटा था और

सम्बन्धमें कमलेश्वरसे कुछ बातें कर रहा था। बाबू वल्लभदास भी वहाँ बैठे हुए शिवनन्दनको सराह रहे थे, कि इतनेमें ही कमलेश्वरने अवसर देखकर कहा,—"भाई शिवनन्दन! देखो, एक बात कहता हूँ। तुम व्याख्यान तो बराबर ही देते हो; परन्तु पहले मनुष्यको स्वयं आदर्श बनना चाहिये, तब वह दूसरोंको आदर्श बना सकता है। तुम जिस बातका उपदेश दूसरोंको देते हो, उसे कार्य-रूपमें परिणतकर भी तो बताओ, कि इससे कितना लाभ है, जिसे प्रत्यक्ष रूपमें देखकर लोग तुम्हारे अनुयायी बनेंगे।"

शिवनन्दनने बड़े उत्साहसे कहा,—"अवश्य! मैं अवसर पड़ते ही आप लोगोको दिखा दूँगा, कि मैं मुँहसे जो कहता हूँ, उसे कार्य रूपमें परिणत करनेके लिये भी तय्यार हूँ।"

कमलेश्वरने कहा,—"अवसर फिर कब आयगा। शुभस्य शीघ्रम्। शारदाचरणके मिलनेकी तो अब कोई सम्भावना नहीं है। फिर तुम क्यों नहीं किसी सुयोग्य पात्रसे अपनी बहनका विवाह करा देते।"

शिवनन्दन एकाएक चौंक पड़ा। बोला,—"इस घरपर अभी मेरा क्या अधिकार है? पिताके वर्त्तमान रहते, मैं इस सम्बन्धमें एक अक्षर भी अपने मुँहसे नहीं निकाल सकता।"

कमलेश्वरने कहा,—"जब तुममें अपने सिद्धान्तको मनानेकी शक्ति नहीं है, जब तुम अपने विपक्षियोंपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकते, तब तुम क्या समाजका सुधार करोगे?"

वल्लभदासने कहा,—"नहीं, हतोत्साह होनेकी कोई आवश्य-

कता नहीं है ; परन्तु इस बातका तुम्हें उद्योग करना चा
मैं समझता हूँ, कि जगदम्बा यदि राजी हो जाये तो तुम्हा
भी किसी प्रकारकी आपत्ति न करेंगे। यह अवसर भी
है। तुम्हारे पिता इस समय यहाँ हैं नहीं है। जगदम्बाके
हो जानेपर फिर सब काम बन जायगा।"

शिवनन्दनने दबी ज़बानसे कहा,—"अच्छा, मैं चेष्टा करूँ
कमलेश्वरने कहा,—"चेष्टा नहीं, इस कार्यके लिये पूरा
करो।"

शिवनन्दन स्वीकार कर अपने घर आया। उसने इ
बड़ा सबल बनाया और दो बार इस विचारसे जग
पास गया, कि इस विषयका जिक्र करूँगा ; परन्तु वहाँ
कुछ सङ्कोच और लज्जा इस तरह उसके मुँहको दबा देते
कि वह जगदम्बाके चेहरेकी प्रतिभा देखकर ही वहाँसे
आता था। जगदम्बाने भी उसकी उत्सुकतापर ध्यान
परन्तु कुछ स्थिर न कर सकी। तीसरी बार फिर भी शिव
अपनी कमजोरी पर बहुत कुछ खिजलाता हुआ, जगदम्बाके
गया ; परन्तु फिर भी कुछ बोल न सका और उसके
ओर देखता हुआ खड़ा रह गया।

इस बार जगदम्बाने कहा,—"क्यों भय्या ! तुम
आते हो और फिर लौटकर चले जाते हो। तुम्हारे हाव
ऐसा मालूम होता है, मानो तुम मुझसे कुछ कहना चाहते
परन्तु किसी सङ्कोचवश कुछ कहते नहीं।"

शिवनन्दनने कहा,—"हाँ, बात तो ऐसी ही है।"

जगदम्बा बोली,—"फिर कहते क्यों नहीं?"

परन्तु शिवनन्दनका मुँह न खुला। बात बदलकर बोला,—"कुछ चिट्ठी आई है, पिताजीको तबियत कैसी है?"

जगदम्बा बोली,—"हाँ, चिट्ठी तो आई है, उनकी तबीयत अभी वैसी ही है; परन्तु भय्या! हमने एक बात सुनी है। कहो तो पूछूँ।"

शिवनन्दनने अकचकाकर पूछा,—"क्या सुना है?"

जगदम्बा बोली,—"उस दिन बल्लभदासकी स्त्री आई थी, वह कहती थीं, कि आजकल तुम भी सुधारक हो गये हो, बड़े बड़े व्याख्यान देते हो?"

शिवनन्दनने सङ्कोचसे कहा,—"अच्छा ही करता हूँ न? मुझसे भारतीय विधवा स्त्रियोंकी दुर्दशा देखी नहीं जाती।"

जगदम्बा बोली,"—तुम्हारी बड़ी बदनामी हो रही है। उस दिन कोई और भी माँसे तुम्हारी निन्दा करता था। बताओ, बाबूजी सुनेंगे तो क्या कहेंगे?"

शिवनन्दन बोला,—"जब मनुष्य कोई नया काम करनेके लिये तय्यार होता है, तब पहले उसकी बदनामी होती है। जिस तरह राजाको अपने राज्य-सिंहासनकी जड़ सुदृढ़ करनेके लिये उसके नीचेकी मिट्टी रक्तसे सींचनी पड़ती है। उसी तरह किसी नये कार्यकी जड़को बदनामीसे सिंचन करना पड़ता है। अतः उसके लिये डरकी कोई बात नहीं है। विचार करनेको

बात तो यह है, कि मैं जो काम कर रहा हूं, वह ... नहीं।"

जगदम्बा बोली,—"तुम इस झमेलेमें न पड़ो।"

शिवनन्दनने कहा,—"अब जिस कामको अपने हाथ... है, उसे तो छोड़ता नहीं।"

जगदम्बा बोली,—"तो झूठ ही बदनाम हो जावोगे!"

शिवनन्दनने कहा—"पर विधवाओंको अन्तमें ... होगा।"

जगदम्बा बोली,—"लाभ बिलकुल न होगा—देशकी ... दुर्दशा हो जायगी।"

शिवनन्दन बोला,—"ऐसा क्यों?"

जगदम्बाने कहा,—"भय्या! तुम अभी स्त्रियोंका ... समझे हो? दुराचारिणियोंकी तो बात ही छोड़ दो। ... साध्वी इस बातको सुनना भी पाप-जनक समझेगी, ... त्यागका महत्व समझती हैं। भय्या! मेरी बात मानो ... ही समझ लो, कि इस कार्यमें तुम्हें सिवा अपयशके ... हाथ न लगेगा।"

शिवनन्दनको फिर कुछ बोलनेका साहस न हुआ। ... दोनोंमें बातें हो ही रही थीं, कि शिवनन्दनकी माता ... पहुँची। उनका स्वभावसे आरम्भसे ही क्रोधी था। आते ... कर बोलीं,—"और क्या होगा? गली-गली थू-थू हो ... कान नहीं दिया जाता, अपने कुलका ... गांव ... देश...

करेगा ? पढ़ना लिखना साढ़े बाइस, न जाने किन आवारेकी सङ्गति हुई है, कि इसकी तो मति ही भ्रष्ट हो गई है।"

शिवनन्दन बोला,—"क्यों नाहक बिगड़ती हो। मालूम तो है, कि मेरी आवारोंकी सङ्गति है। फिर क्यों झूठ ही हल्ला मचाती हो। मैं अब इस घरमें ही नहीं रहूँगा।"

प्रियम्वदा बाईने भी क्रोधमें आकर कहा,—"नहीं, रहेगा तो चला जा।"

रघुनन्दन उठकर बाहर चला आया। अभी वह घरसे बाहर निकला ही था, कि बाबू ब्रजेन्द्रनारायणके एक वयोवृद्ध साथी उसे मिल गये। उन्होंने भी ब्रजेन्द्रनारायणकी सात्विकताका भाव लेकर बहुत तरहसे धिक्कारा। शिवनन्दन झल्लाया हुआ तो था ही, उनसे झगड़ पड़ा। वे अपनासा मुँह लेकर चले गये। शिवनन्दन कुछ देरतक तो इधर उधर घूमता रहा। इसके बाद कमलेश्वरके यहाँ जा पहुँचा।

कमलेश्वरने उसे देखते ही पूछा,—"क्यों क्या हुआ ? आज सुस्त क्यों हो रहे हो ?"

शिवनन्दनने कहा,—"सुस्त नहीं हूँ ; परन्तु भाई अपने घर पर मेरा कोई जोर नहीं है। मैं अब उस घरमें जाऊँगा भी नहीं।'

कमलेश्वर बोला,—"क्यों, क्या हुआ ?"

शिवनन्दन बोला,—"होगा क्या ? मेरे व्याख्यानोंको लेकर हलचल मच रही है। घरमें भी कोई शिकायत कर आया है।"

कमलेश्वर बोला,—“तो तुम्हारे प्रस्तावसे तुम्हारे
कोई भी सहमत नहीं हैं।”

शिवनन्दन बोला,—“नहीं, कोई नहीं।”

इसके बाद दूसरे ही विषयपर बातें होने लगीं। कमले
कुछ सोचमें पड़ा हुआ सा दिखाई देने लगा। लगभ
मिनिटतक सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद शिवनन्दनने
“भाई! देखो, मेरी बदनामी तो हो ही चुकी। यह भी मैं
तरह जानता हूँ, कि मुझसे मेरे घरवालोंकी नहीं पटती।
अवस्थामें मेरी इच्छा है, कि यदि तुम रहनेके लिये कोई
तो अलग होकर रहूँ, तभी यह सुधारका काम कर
अन्यथा मुझे अपने घरवालोंके मतानुसार ही चलना पड़ेगा।”

कमलेश्वरने कहा,—“बात तो ठीक है; परन्तु खर्च
तुम्हारा बढ़ जायगा। पचास रुपये मासिककी तो बात
दो। अभी तक डेढ़ दो हज़ार रुपये और भी तुम्हारे न
हैं।”

सुनकर शिवनन्दन अवाक् हो गया। असल बात
कि जबसे कमलेश्वर तथा शिवनन्दनकी मैत्री हुई थी।
दोनों साथ ही घूमते, फिरते और सैर सपाटेके लिये
और कितने ही उचित और अनुचित कार्योंमें दोनोंका
स्वाहा होता था। जो रुपये खर्च होते थे, वह अपने
स्वार्थकी सिद्धिकी आशामें कमलेश्वर खर्च तो करता था
परन्तु ये रुपये बराबर शिवनन्दनके नाम लिखता जाता

शिवनन्दन समझता था, कि मित्रताके अनुरोधसे ही ये रुपये कमलेश्वर खर्च करता है; परन्तु आज जब कमलेश्वरने उन रुपयों-का हिसाब निकालकर शिवनन्दनके सम्मुख रख दिया, तब काटो तो खून नहीं। शिवनन्दनका रक्त ही सूख गया और वह उदास चित्तसे बोला,—"हाँ भाई! मुझे इन रुपयोंका बिल्कुल ही ध्यान न था। मैं शीघ्र ही यह रुपये तुम्हें दे देनेकी चेष्टा करूँगा।"

कमलेश्वरने कहा,—"दे देना तो तुम्हें अवश्य उचित है; परन्तु इसके लिये मैं तुम्हें कष्ट नहीं दिया चाहता। तुम्हारी जब इच्छा हो तब देना।" वह बात कमलेश्वरने कुछ ऐसे स्वरमें कही, कि शिवनन्दनको यह बुरी मालूम हुई और वह अपने कर्मपर पश्चाताप करता हुआ, वहाँसे उठ खड़ा हुआ।

इस समय उसके हृदयमें कुछ ऐसी हलचल मच गई, कि वह बिना किसीसे कुछ कहे सुने बम्बई चला गया। वहाँसे उसने कमलेश्वरको अपने बम्बई पहुँचनेका समाचार भेज दिया; परन्तु घरपर अभी जिक्र करनेके लिये मना कर दिया। इधर कमलेश्वरने भी यह सोचकर, कि शायद अपने ऊपर ही किस प्रकारकी बदनामी आये, उस बातका जिक्र न किया।



अट्ठारहवाँ परिच्छेद ।

नवीन षड़यंत्र ।

जबतक रघुनन्दनके पास पत्र भेजनेवाली स्त्रीका परिचय हमें नहीं मिलता, तबतक हम भी उसे पागलिनीके ही सम्बोधन करेंगे और पाठकोंको भी इस बातपर ध्यान चाहिये ।

यद्यपि जानकीशरणने रघुनन्दनको उस पत्रपर उपेक्षा का ही परामर्श दिया था; परन्तु रघुनन्दन अपने हृदयकी दु अथवा कुतुहलवश उस विषयको अपने चित्तसे एकदम हट सका । उसके हृदयमें अहर्निश यह विचार चक्कर लगाया था, कि यह पगली कौन है और उसका क्या अभिप्राय है।

गर्मीका दिन, सन्ध्याका समय था । रघुनन्दन अपने से लौटकर विश्राम करने बाद गरमीकी अधिकतासे अपने की बगलके स्नानागारमें स्नान कर रहा था । इसी समय उसे रमणीके पायलकी ध्वनि सुन पड़ी । रघुनन्दनने सोचा कदाचित कोई स्त्री स्नान करनेके लिये आया चाहती है। वह शीघ्रतासे वहाँसे हटना ही चाहता था, कि किसीने सुलभ कोमल स्वरमें कहा,—"आप जल्दी न करें, स्ना लें ।"

रघुनन्दन और भी सङ्कोचमें पड़ गया । आजतक उसे

किसी गृहस्थकी स्त्रीको इस तरह पर-पुरुषसे बोलते न सुना था। अतः वह अत्यन्त सङ्कुचित भावसे किसी तरह स्नान कर वहाँसे चला आया। उसने उलटकर एक बार देखा भी नहीं, कि यह बोलनेवाली स्त्री कौन है ?

इसके बाद वह वस्त्र पहनकर बाहर चला गया। लगभग नौ बजे रात्रिके समय वह फिर लौट आया। आनेके साथ ही उसकी दृष्टि एक पत्र पर पड़ी। पत्रपर लिखे हुए अक्षरोंको देखते ही वह पहचान गया। उसने शङ्कित चित्तसे वह पत्र खोला। पत्रमें लिखा था।

"इधर कई दिनोंसे मैं आपकी चालोंपर पूरी तरह लक्ष्य रखती हूँ। मैं जानती हूँ और समझ गई हूँ, कि आप तथा आपके मित्रकी यही सलाह हुई है, कि मेरे पत्रकी उपेक्षा की जाय; परन्तु इस तरह उपेक्षा करनेसे काम न चलेगा। मैं पहले भी कह चुकी हूँ और फिर भी कहती हूँ, कि मेरी इच्छाकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। मैं अवश्य अपनी इच्छा पूरी करूँगी। मेरी बड़ी इच्छा है, कि एक बार आपसे मिलूँ। देखूँ यह इच्छा किस तरह और कब पूरी हो सकती है ?

आपकी—

पगली।

रघुनन्दनने यह पत्र भी अपने मित्रको दिखाया। अभी इन दोनोंमें इसी सम्बन्धमें कुछ बातें हो ही रही थीं, कि एकाएक उस मकानके मालिक हरिदास वहाँ आ पहुँचे। हरिदास और

भी कभी कभी समय मिलनेपर आते और इन दोनोंसे बातें
करते थे। आज उन्होंने आनेके साथ ही बड़े आग्रहसे कहा
"आज आप दोनोंको मेरी कुटि पवित्र करनेकी कृपा करनी होगी
क्योंकि आज कुछ गाने-बजानेका सामान है।"

यद्यपि रघुनन्दनको गाने बजानेका विशेष शौक न था तो
हरिदासके आग्रह करनेपर उन दोनोंने स्वीकार कर लिया
रात्रिके दस बजते बजते गाना बजाना आरम्भ हुआ, हरि
स्वयं आकर इन दोनोंको ऊपर ले गया।

जिस कमरेमें ये दोनों बैठाये गये थे, वह पूर्ण रूपसे सजा
हुआ था। उसे देखनेसे ही मालूम होता था, कि यह किसी
अथच शौकीन तबियतके मनुष्यका निवासस्थान है। आज
दोनोंकी पूरी खातिरदारी हुई। कई मनुष्योंका गाना हु
इसके बाद ही यह गान-सभा भङ्ग हुई।

अभी यह दोनों लौटकर नीचे पहुँच ही थे, कि अ
मधुर सङ्गीतकी अनोखी लहर इनकी कानोंमें आ पड़ी,—
मनकी सुधि भूलि सँवरियाँ कैसी बजाई बाँसुरिया रे।"

अतः श्रोतागण जो आये थे, उनमें कितने ही सङ्गीत-प्रे
और वे जानते थे, कि हरिदासकी स्त्री गाती हैं; परन्तु व
सम्मुख न गाकर, उनके उतर आनेपर ही उन्होंने अपनी
सङ्गीत-कला दिखानी आरम्भ की है। अस्तु, एक ही गाना ग
कर हरिदासकी स्त्री चुप हो गई और इसके कुछ क्षण
ही प्रसन्न वदन हरिदास नीचे उतर आये। कई सज्जनोंने

समय उन्हें धन्यवाद दिये और वह धन्यवाद सहर्ष स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा,—"इसी बहाने दो घण्टे जी बहल जाता है।"

और सब तो चले गये; परन्तु हरिदास रघुनन्दनके बैठक खानेमें बैठे रह गये। उनसे कितने ही प्रकारकी बातें होती रहीं। अन्तमें इन दोनोंके व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर हरिदास ऊपर जा पहुँचे।

परन्तु इसी बीचमें न जाने क्या गड़बड़ी मच गई, कि ऊपरसे कुछ झगड़ेसी आवाज़ें आने लगीं। ऐसा मालूम होता था, मानो हरिदास भी बिगड़ बिगड़कर किसीसे बोल रहे हैं। साथ ही कोई स्त्री भी उसी तरह उनकी बातोंका उत्तर प्रत्युत्तर देती जाती है।

यह झगड़ा कुछ क्षणतक चलता रहा। इधर रघुनन्दन अपने भोजनके सामानमें लगा। अभी वह भोजन कर उठा ही था, कि एकाएक एक मज़दूरिन ऊपरसे आ पहुँची और रघुनन्दन की ओर देखकर बोली,—"जरा ऊपर जल्दी चलिये। आपको बुलाया है।"

रघुनन्दनने एक बार अपने मित्रके चेहरेकी ओर देखा और उसकी सम्मति पाकर ऊपर चला गया।

ऊपर जाते ही उसे कुछ विचित्र काण्ड दिखाई दिया। वह सकुचाकर एक ओर खड़ा हो गया। इसी समय हरिदासने उसे पुकारा। अभी हरिदासकी पुकारका रघुनन्दन कोई उत्तर दिया

ही चाहता था, कि एकाएक एक स्त्रीने जोरसे कहा,—"आइ
रघुनन्दन बाबू! आप जब इतने दिनोंसे हमारे यहाँ हैं
घरके आदमी हैं। आपसे क्या परदा है।"

इस स्त्रीकी अवस्था लगभग पचीस या छब्बीस वर्षके
गोरा रंग तथा समूचा शरीर साँचेमें ढला सा था। सारां
कि वह एक सुन्दरी रमणी थी। उसकी पुकार सुनकर औ
भीतरवाले कमरेमें बैठे देखकर रघुनन्दन सकुचा गया। व
न बढ़ा। इसी बीचमें उस स्त्री और साथ ही हरिदा
कहा,—"आते क्यों नहीं हैं, सङ्कोच किस बातका है!
आइये।"

लाचार रघुनन्दन चला गया। भीतर जाते ही उसने
कि एक ओर गद्दी तकियेके सहारे हरिदास बैठे हैं और
कुछ दूरीपर एक चटाईपर वह स्त्री। रघुनन्दनको मालू
कि हरिदासकी स्त्रीके अतिरिक्त और कोई स्त्री वहाँ नहीं
अतः इस समय इस तरह उसे एकाएक बुलाने और हरिद
स्त्रीके सम्मुख आ जानेपर वह कुछ अकचकाया। उसने
दासकी ओर देखकर पूछा,—"कहिये, क्या आज्ञा है?"

हरिदासने कहा,—"देखिये, आप पढ़े-लिखे आदमी हैं
ही विचारिये, कि जरा जरा सी बातपर इस तरह बिगड़ना
आपसमें लड़ाई-झगड़ा होना क्या अच्छी बात है? क्या इस
इनका गाना उचित था? अकेले आप ही रहते तो
चिन्ताकी बात न थी। परन्तु इस तरह इतने आद

के बीच गाना बजाना क्या इन्हें शोभा देता है? क्या कुलवधुओंके यही लक्षण हैं।"

रघुनन्दन चुपचाप खड़ा रह गया। उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। हरिदासने फिर कहा,—"क्यों बोलते, ही क्यों नहीं ? आप भी तो समझ सकते हैं, कि मेरा कथन यथार्थ है या नहीं ?

बीचमें ही वह स्त्री बोल उठी,—"हाँ, आज मना करने चले हैं, जब जबर्दस्ती अपने दोस्तोंके सामने मुझे गाने कहते थे, तब लज्जा और संकोच नहीं होता था। बताइये, रघुनन्दन बाबू ; यह रास्ता भी तो इनका ही बताया है।"

बेचारा रघुनन्दन क्या उत्तर देता, वह अवाक् होकर खड़ा रह गया। उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना। उसको यह दशा देखकर हरिदास बाबूने कहा—"आप खड़े क्यों हैं ? बैठ जाइये।"

रघुनन्दन बोला,—"मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपके पारिवारिक झमेलेमें हस्तक्षेप नहीं किया चाहता।"

रघुनन्दनका यह उत्तर सुनकर वह स्त्री मुस्कुराई। रघुनन्दनने भी देखा, कि वह मुस्कुरा रही है। कुछ क्षण बाद वह बोली,—"यदि आपको मैं बाहरी मनुष्य समझती, तो यहाँ बुलाती ही नहीं, मैं तो समझती हूँ, कि आप इस घरके एक अपने ही मनुष्य हैं।"

उसका यह उत्तर सुनकर रघनन्दन और भी अकचकाया। हरिदास मौन साधकर चुप बैठे थे। वे कुछ भी बोलते न थे।

रघुनन्दनको भी कोई उत्तर सूझ न पड़ता था। वह चु
चाप बैठा हुआ था, परन्तु रह रहकर वह जब कभी सा
और अचानक उसकी दृष्टि उस स्त्रीकी ओर जा पहुँचती,
देखता, कि वह भी उसे निर्निमेष दृष्टिसे देख रही है औ
दोनोंकी आँखें चार होती हैं, तब वह मुस्कुरा देती है।
दासका मानों इधर कुछ ध्यान ही नहीं था; वे कुछ
हुए एक तकियेके सहारे मुँह फेरकर लेटे हुए थे।

कुछ देरतक रघुनन्दन वहाँ लेटा रहा। वहाँ इतनी दे
बैठना उसे भारी मालूम होता था। अतः इस बार उसने
दोनोंसे विदा माँगी और उठकर नीचेको चला आया।

उसे उठते देखकर वह स्त्री एकबार फिर मुस्कुराई।
रघुनन्दनने उस बातपर विशेष ध्यान न दिया। वह सी
वहाँसे नीचे चला गया।



उन्नीसवाँ परिच्छेद।

कूटनीति।

कमलेश्वरने इस वार एक वारमें ही दो पक्षियोंका काम तमाम करना चाहा। उसने शिवनन्दनपर नालिश कर दी, साथमें रघुनन्दनको भी लपेटा। गेहूँके साथ घुन पिसनेकी भी वारी आ गई। शिवनन्दन कलकत्तेमें था, उसे इन बातोंकी कुछ भी खबर न थी। इधर कमलेश्वरने कहा, कि शिवनन्दनने बँटवारा होनेके पहले ही यह रक़म ली थी, अतः उसका देनदार रघुनन्दन भी हो सकता है। बस यही छिद्र देखकर शिवनन्दनसे सलाह कर उसने नालिश कर दी। मुकद्दमा चलने लगा, अबतक इस बातकी किसीको खबर न थी। बड़े आदमियोंका सभी पक्ष करते हैं। अतः यह प्रमाणित होनेमें विलम्ब न लगा, कि शिवनन्दनने जिस समय रुपये लिये थे, उस समय बँटवारा न हुआ था। शिवनन्दनने भी यही स्वीकार किया। रुपयेके बलसे न्याय अन्याय दोनों ही होते हैं। अर्थ द्वारा अनर्थ उत्पन्न होनेमें अधिक विलम्ब नहीं लगता, अतः अदालती कार्रवाइयोंमें भी रघुनन्दनको खबर मिले बिना ही मुकद्दमेका बहुत कुछ अग्रसर हो जाना कोई आश्चर्यकी बात न थी।

एक दिन दोपहरके समय लीलावती, जगदम्बा वगैरह बैठी हुई आपसमें बातें कर रही थीं, इसी समय उस मुहल्लेके वृद्ध श्यामाचरण ज्योतिषी वहाँ आ पहुँचे। ये व्रजेन्द्रनारायणके

समयसे ही पुरोहिताईका कार्य करते थे। वे बड़े ही ध
तथा सरल चित्त पुरुष थे। उन्हें किसी तरह इस मुक
समाचार मालूम हुआ। यह समाचार सुनते ही वृद्ध घबड़ा
हुए। ब्रजेन्द्रनारायणके परिवारपर इनका बड़ा स्नेह था,
इसी कारणसे उस दिवस शिवनन्दनको उन्होंने भर्त्सना
थी और उसके द्वारा अपमानित भी हुए थे। वृद्ध श्यामा
आते ही जगदम्बाकी ओर देखकर कहा,—"बेटी जगदम्बा!
सुना है, कि कमलेश्वरने तुम्हारे दोनों भाइयोंपर नालिश
क्या तुमलोगोंने उससे कुछ रुपये लिये थे।"

लीलावती तथा जगदम्बा दोनोंको इस बारेमें कुछ
थी। अतः जगदम्बाने छूटते ही कहा,—"नहीं, हमलोगोंने तो
भी नहीं लिया है। शिवनन्दन भय्याने लिया हो तो मालूम नहीं

श्यामाचरण बोले,—लिया है, तब तो उसने नालिश
अच्छा, आज मैं इसका पता लगाऊँगा, ज़रा शिवनन्दनके
हो आऊं।

इतना कहकर वृद्ध श्यामाचरण उठ खड़े हुए। यद्यपि
नन्दनने उनका बड़ा अपमान किया था, परन्तु वृद्धका जी
वे सीधे उसी दम शिवनन्दनके यहां जा पहुँचे। इस
शिवनन्दन घरमें न था। यह सब काम इतनी सावधा
किये गये थे, कि प्रियम्वदाबाईको भी इन बातोंकी बिल्कु
खबर न थी। अतः वृद्धको वहांसे भी यों ही लौट आना
उन्हें कुछ भी पता न लगा, परन्तु इतनेपर भी वृद्धका

माना। उन्होंने मुहल्लेवालोंसे पता लगाना आरम्भ किया और अन्तमें यह बात सत्य प्रमाणित हुई। अब वृद्धने आकर जगदम्बाको बुलाकर सब बातें समझा दीं। दोनों स्त्रियाँ यह समाचार सुनकर बड़ी विपत्तिमें जा पड़ीं। उसी दिवस रघुनन्दनको पत्र द्वारा यह समाचार भेजा गया।

रघुनन्दनको इस बातपर एकाएक विश्वास न हुआ। उसने चार भले आदमियोंके सामने बटवारा कर दिया था, उसमें उसने अपना कुछ भी स्वार्थ न रखा था। अतः उसकी धारणा थी, कि जातिवाले इस तरह कदापि झूठी गवाही न देंगे। इसी लिये यह जाननेके लिये, कि इस समाचारमें कितनी सत्यता है उसने एक पत्र अपने बन्धु गोविन्दनारायणको लिखा।

गोविन्दनारायण दैव दुर्विपाकसे उस समय वहाँ न था। वह कहीं बाहर गया हुआ था। उसकी अनुपस्थितिमें कमलेश्वरको अपनी कार्रवाइयाँ पूरी करनेका और भी अवसर मिल गया। उसने चुपचाप अदालती कार्रवाइयाँ कर डिगरी प्राप्त कर ली।

परन्तु यह समाचार भी अधिक दिनों तक छिपा न रह सका। धीरे धीरे फैलता ही गया। लीलावतीको भी यह समाचार मालूम हुआ, परन्तु इस रूपमें कि कमलेश्वरने शिवनन्दनपर नालिश की है। यद्यपि बँटवारा हो जानेके कारण इसमें लीलावतीकी कोई विशेष हानि न थी, परन्तु वह शिवनन्दनके लिये बड़ी घबड़ा उठी। उसने मोहनीको भेजकर एकबार अपनी सास तथा शिवनन्दनको बुलाया भी, परन्तु वहाँसे कोई न आया। इससे

लीलावती तथा जगदम्बा और भी उद्विग्न हो उठी। परन्तु
पास कोई उपाय न था। गोविन्दनारायणकी खोज करा
परन्तु गोविन्दनारायण भी नहीं था। अतः सब समाचार
नन्दनको लिखकर लीलावती चुप हो बैठी।

एक दिन तीसरे पहरका समय था, लीलावती
गृहस्थीके कार्य कर रही थी। जगदम्बा उदास चित्तसे
एक ओर बैठकर कुछ सी रही थी, इसी समय मोहनी
पहुँची। मोहनी कुछ देर तक जगदम्बाको देखती रही।
बाद बोली—"बीबी सुना है, कि कमलेश्वर बाबूने तुम
नालिश की है। अब क्या होगा?"

जगदम्बाने कहा,—"जो होना होगा सो होगा, छोटे
हमलोगोंने पहले ही मना किया था, परन्तु उन्होंने
माना।"

मोहिनी बोली,—"परन्तु मैंने तो कुछ दूसरी ही बात
कमलेश्वर बाबू तो ऐसे नहीं थे, दो चार हजार रुपये
हाथका मैल समझते हैं। इसमें जरूर कोई दूसरी बात है

जगदम्बा बोली,—"क्या बात है, तुम्हें कुछ मालूम हु

मोहिनी बोली,—"कैसे बताऊँ, कहते लज्जा होती है।
राम!! वही विधवा विवाहवाली बात है। सुना है,
तुम्हारे लिये पागल हो रहे हैं।"

इतना कहकर मोहिनी ठठाकर हंस पड़ी। इसके बाद
से फिर जगदम्बाका चेहरा देखने लगी, कि उसकी

क्या प्रभाव पड़ा, परन्तु मोहिनीकी बात सुनकर भी जगदम्बाने कोई उत्तर न दिया। वह समझी, कि शायद मोहिनी परिहास कर रही है।

कुछ देर बाद मोहनीने उसी तरह हँसते हुए कहा—"क्यों बीबी, तुम्हारे ही लिये न यह नालिश फौजदारी हो रही है?"

जगदम्बाने कहा,—"आज तुझे क्या हुआ है? कुछ भाँग तो नहीं पी आई है?"

मोहनी बोली—"भाँग क्यों पियूँगी, जो सुना है, सो कहती हूँ, इसमें मेरा क्या दोष है?"

जगदम्बाने पूछा,—"तुझे यह समाचार कौन देता है?"

इस बार मोहनीने फिर एक टटोलनेवाली दृष्टि जगदम्बाके चेहरेपर डाली; परन्तु वह वैसी ही शान्त और गम्भीर दिखाई दी। उसके चेहरेपर उत्सुकता अथवा कौतुहलका चिन्हमात्र भी न दिखाई दिया। अतः मोहनीने कुछ सकुचाकर कहा,—"यह सुनकर क्या करोगी। किसी तरह मालूम हो गया; परन्तु बात सच्ची है, इसमें सन्देह नहीं है।"

जगदम्बा बोली—"जब तू यहाँतक खबर रखती है, तब यह बात तूने पहले क्यों नहीं कही?"

जगदम्बाकी बातोंसे मोहनीको कुछ सहारा मिल गया। उसने अब कुछ और भी अग्रसर होना उचित समझा। वह बोली,—"कैसे कहूँ, राम! राम!! यह भी कोई कहनेकी बात है और हमलोग ठहरीं मज्दूरिनकी जात, ज़रासा किसीको सन्देह हो

जाय तो जन्मभरके लिये बदनामी और मुँह दिखानेकी
जगह न रहे।

जगदम्बाने कहा—"फिर आज तूने क्यों कहा?"

मोहनी बोली—"हम दाई मज्दूरिनोंके पेटमें जो बातें
नहीं। एक बात और भी सुन लो, यह नालिश खाली
न्दन बाबूपर ही नहीं हुई है, बड़े बाबूपर भी। कमलेश्वर
कहना है, कि शिवनन्दन बाबूने जब रुपये लिये थे, तब
वारा नहीं हुआ था।"

जगदम्बाने कहा—"ऐसा है! तब तो उन्होंने अन्याय
है।"

मोहनी बोली,—"सो मैं क्या जानूं; परन्तु सुना है,
नन्दन बाबूने कहा था, कि तुम्हारा विवाह उनसे करा दी
इसबार जगदम्बा कुछ उत्तेजित हो उठी। बोली
सब तूने किससे सुना?"

मोहनी बोली,—"और किससे सुनूंगी। कमलेश्वर बाबू
कहते थे, उस दिन अपने एक दोस्तसे ये सब बातें कर
मैंने सुन लिया। बीबी! यह रुपयेका लेन-देन नहीं,
झमेला तुम्हारे लिये ही है।"

जगदम्बा चुप हो रही, उसे स्मरण हो आया, कि उस
शिवनन्दन कई बार कुछ कहनेकी इच्छासे उसके पास
और फिर लौट गया था। अन्तमें दूसरे ही ढंगकी बातें
गया। अतः मोहनीकी बातोंमें सत्यताका कुछ अंश उसे दिख

लगा। वह चुप हो रही। घोर चिन्ताके चिन्ह उसके चेहरेपर दिखाई देने लगे।

उसको चुप देखकर मोहनीने "मौनं सम्मति लक्ष्मणम्" समझ लिया। वह बोली—"तुम तय्यार हो जाओ तो यह झमेला ही निपट जाये।"

परन्तु जगदम्बाने कोई उत्तर न दिया। मानों उसके कानोंमें ये शब्द ही न गये। कुछ क्षण बाद उसने कहा—"मोहनी! आज पीछे फिर ये बातें मुझसे न कहनी।"

इसी समय लीलावती वहां आती हुई दिखाई दी। लीलावतीको देखकर जगदम्बाने कहा—"भाभी! एक बात तुमने सुनी है? कमलेश्वर बाबूने बड़े भय्या तथा छोटे भय्या, दोनोंपर ही नालिश की है। बड़े भय्याको इस समय बुला लेना चाहिये। न जाने पीछे और क्या क्या उपद्रव खड़े हो जायें।"

लीलावतीने कहा—"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

जगदम्बाने मोहनीसे जो बातें हुई थी बताते हुए कहा—"भाभी! इसमें और भी बहुतसे रहस्य हैं। जो समयपर आपही मालूम हो जायँगे।"

लीलावतीको आते देखकर मोहनी वहाँसे हट गई थी। इस समय निराला देखकर जगदम्बाने कहा—"मुझे मोहनीके लक्षण अच्छे नहीं मालूम होते। इसका इस घरमें रहना उचित नहीं मालूम होता।" इतना कहकर अपने सम्बन्धकी सब बातें भी उसने लीलावतीसे कह दीं। लीलावती आश्चर्य चकित रह गई।

कुछ देर बाद बोली – "मुझे भी कई दिनोंसे इसपर कुछ
हो रहा है ; परन्तु इसका इतना साहस न होगा कि कोई
खड़ा करे। तबतक दो चार दिनोंमें कलकत्तेसे भी आ
उसके बाद देखा जायगा। अभी इसको भी अपना शत्रु
उचित नहीं है ; क्योंकि इस समय हम लोगोंको किसीका
नहीं है।"

इतना कहकर लीलावती अन्य कामसे चली गई।
भी अपने कार्यमें लगी।



बीसवाँ परिच्छेद ।

रहस्योद्घाटन ।

रघुनन्दन उस दिवस ऊपरसे लौटकर बड़ी चिन्तामें जा पड़ा। अब उसे इस बातपर तनिक भी सन्देह न रह गया, कि वह पगली नाम धारिणी स्त्री हरिदासकी स्त्री थी। यह समझकर उसकी चिन्ता और भी अधिक हो गई। उसने यह सभी हाल अपने मित्र जानकीशरणसे कहा और फिर उन दोनोंने यह स्थिर किया, कि यह मकान भी छोड़ देना चाहिये।

इसी विचारके अनुसार दूसरे दिन सवेरे ही हरिदासको यह समाचार दे दिया गया, कि तीन चार दिवस बाद यह मास समाप्त होते ही हमलोग मकान छोड़ देंगे। हरिदासने उन दोनोंको बहुत तरहसे समझाया; परन्तु जब ये दोनों किसी तरह भी स्वीकृत न हुए तब लाचार होकर वह लौट गये।

उसी दिवस लगभग आठ बजे रातका समय होगा, रघुनन्दन अभी अपने एक शिष्यको पढ़ाकर आया था। अभी वह कमरा खोलकर बैठा ही था, कि इसी समय पिछले दरवाजेपर किसीने धक्का दिया। रघुनन्दनने चौंककर पूछा,—कौन ?"

रमणी कण्ठसे आवाज़ आई— "ज़रा दरवाज़ा खोलिये"

रघुनन्दन पहचान न सका, कि यह किसका स्वर है। अतः उसने कुछ सकुचाते हुए दरवाज़ा खोल दिया। यह दरवाज़ा

उस ओर पड़ता था, जिधर मकानका भीतरी भाग था।

दरवाज़ा खुलते ही रघुनन्दनको हरिदासकी दासी खड़ी दिखाई दी। दासीने कहा,—"एक बार ऊपर चलिये, आवश्यक कार्य है।"

रघुनन्दनने पूछा, -"किसने बुलाया है?"

दासी बोली,—"किशोरी बीबीने।"

रघुनन्दन समझ गया, कि हरिदासकी स्त्रीका नाम "किशोरी" है। उसने कहा,—"इस समय मुझे बुलानेकी क्या आव... कता है?"

दासी बोली,—"बहूजीको आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

रघुनन्दन फेरमें जा पड़ा, क्या उत्तर दे। कुछ सोच... बोला,—"अभी मैं बाहरसे आ रहा हूँ। इस समय मैं नहीं... सकता।"

दासीने कहा,—"फिर अवसर न मिलेगा। आप ... समय चलिये। इस समय बाबू भी नहीं हैं। आपसे ... सी ज़रूरी बातें कहनी हैं।"

रघुनन्दन बोला, -"तुमने यह बता दिया सो अच्छा किया। मैं अकेलेमें दूसरेकी स्त्रीके पास जाना उचित ... समझता। तुम जाओ, इस समय मैं न जा सकूँगा।"

दासीने यह उत्तर सुन पीछे घूमकर देखा और मुस्कुरा... इसी समय पीछेसे किसीने कहा,—"अच्छा, वे नहीं आया चा... तो मैं ही आती हूँ। मैं यहीं बातें कर लूँगी।"

यह कहकर किशोरी स्वयं ही आगे बढ़ आयी। दासीने बाहरकी ओरका दरवाज़ा बन्द कर दिया। किशोरी उसी ड्योढ़ीमें जा खड़ी रही। इस समय रघुनन्दन उसके ठीक सामने एक चौकीपर बैठा हुआ था।

आज किशोरीने अपना अद्भुत शृंगार किया था। एक तो ईश्वरके दिये हुए रूप रङ्ग और यौवनने उसको सौन्दर्य्यकी खान बनाही रखा था। दूसरे, सोने तथा जड़ाऊ जेवरोंकी चमकसे उसका मनोहर मुखमण्डल और भी दमक रहा था। शरीर पर एक बहुत ही बहुमूल्य रेशमी साड़ी शोभा दे रही थी। रघुनन्दनने उसको इस तरह सुसज्जित भावसे कभी न देखा था। किशोरीके उस कमरेके सामने आते ही वहाँ मानो एक प्रकारका प्रकाश फैल गया।

रघुनन्दन इस समय आत्म विस्मृत सा होकर कुछ क्षणतक उसके चेहरेकी ओर देखता रहा। उसके बाद एकाएक चौंककर उसने अपनी आँखें झुका लीं। किशोरी भी एक विलक्षण दृष्टिसे रघुनन्दनको देख रही थी। उसकी दृष्टिसे ऐसा मालूम होता था, मानो वह देखनेवाले पर अपना कुछ प्रभाव पहुंचाया चाहती है। कुछ देर तक इसी तरह रघुनन्दनकी ओर देखकर वह मुस्कुराती हुई बोली,—"क्यों रघुनन्दन बाबू! आप क्या हमलोगोंको छोडकर चले जायँगे।"

रघुनन्दन मन ही मन मानो काँप उठा। उसने बड़ी नम्रतासे कहा,—"हाँ, प्रबन्ध तो ऐसा ही हुआ है।"

किशोरी बोली,—"परन्तु आप हमलोगोंसे इतने अप्रसन्न हो गये ?" इतना कहकर उसने दासीकी ओर एक दृष्टि डा दासी तुरन्त ही वहाँसे हट गई। इसके बाद किशोरी रघुनन्द एक तीव्र कटाक्ष करती हुई बोली,—"मैं तो आपको अपना मनुष्य बनाया चाहती हूँ। क्यों, क्या बात है, जिससे आप अप्रसन्न हो गये हैं।"

रघुनन्दन क्या उत्तर दे, कुछ सोच न सका। चुप रह ग उसको चुप देखकर किशोरी बोली,—"इस मकानमें मुझे बहुत दिवस हो गये, कितने ही किरायेदार आये और चले गं परन्तु आपके व्यवहार, सौजन्य और सङ्गतिने कुछ ऐसा प्र जमाया है, कि आपको जाने देनेकी इच्छा नहीं होती। न क्यों मन आपके लिये व्याकुल होता है। इच्छा होती है, कि कहीं न जायँ और सदा यहीं रहें।"

रघुनन्दनने कहा,—"परन्तु हमलोग तो स्थिर कर चुके कि अब दूसरे मकानमें जायँगे।"

इसबार किशोरीने गतिका बड़े करुणा भरी स्वरसे कहा,—" पता नहीं लगता, न जाने क्यों मेरा हृदय आपकी ओर आ होता जाता है और आपको दूर जाने देनेकी इच्छा नहीं हो नहीं कह सकती यह प्रेम है या हृदयका आवेग। परन्तु तो बुद्धिमान और विद्वान मनुष्य हैं। बताइये, यदि एक किसी पुरुषसे पवित्र बन्धुता करना चाहे तो इसमें क्या है ?"

रघुनन्दनने बड़े ही शान्त भावसे कहा,—"आप विवाहिता हैं, आपका प्रेम अपने पतिके अतिरिक्त और किसी दूसरेपर होना उचित नहीं।"

किशोरी बोली,—"नहीं जानती, कि शास्त्रमें क्या लिखा है, परन्तु प्रेम नेम नहीं जानता। सुना है, वह अन्धा होता है। परन्तु एक बात यह भी तो है, कि यदि प्रेममें स्वार्थ हो, पाप वासना हो तो वह कलुषित हो सकता है; परन्तु जिसमें यह सब कुछ भी नहीं है, उसमें क्या दोष है ?"

किशोरी बातें करती जाती थी और रघुनन्दनका अन्तरात्मा काँप रहा था। वह कभी इधर देखता कभी उधर। ऐसा मालूम होता था, मानो उसके हृदयमें कोई भयानक भय समा रहा है। वह बेतरह शङ्कित हो रहा था; बड़ी कठिनतासे अपने हृदयकी धड़कन दबाकर वह बोला,—"प्रेम दो भागोंमें विभक्त नहीं हो सकता। विवाहिता स्त्रीका कर्त्तव्य है, कि वह अपने हृदयका समस्त प्रेम, समस्त अनुराग अपने पतिके चरणोंमें ही अर्पण कर दे। दूसरी ओर ध्यान देनेकी भी उसे आवश्यकता नहीं है। और फिर यह निःस्वार्थ बन्धुता नाम मात्रके लिये है। आप मुझे क्षमा कीजिये। मैं पर स्त्रीसे बातें करना भी पाप समझता हूँ।"

किशोरी ठठाकर हँस पड़ी। उसकी उस हँसीसे वह स्थान गूंज उठा। रघुनन्दन और भी सँकोचमें आ गया। उसकी इच्छा होती थी, कि कहीं भाग जाये; परन्तु इस समय मानो

किशोरी बोली,—"परन्तु आप हमलोगोंसे इतने अप्रसन्न हो गये ?" इतना कहकर उसने दासीकी ओर एक दृष्टि ड दासी तुरन्त ही वहाँसे हट गई। इसके बाद किशोरी रघुन्द एक तीव्र कटाक्ष करती हुई बोली,—"मैं तो आपको अपना मनुष्य बनाया चाहती हूँ। क्यों, क्या बात है, जिससे आप अप्रसन्न हो गये हैं।"

रघुनन्दन क्या उत्तर दे, कुछ सोच न सका। चुप रह ग उसको चुप देखकर किशोरी बोली,—"इस मकानमें मुझे बहुत दिवस हो गये, कितने ही किरायेदार आये और चले परन्तु आपके व्यवहार, सौजन्य और सङ्गतिने कुछ ऐसा जमाया है, कि आपको जाने देनेकी इच्छा नहीं होती। न क्यों मन आपके लिये व्याकुल होता है। इच्छा होती है, कि कहीं न जायँ और सदा यहीं रहें।"

रघुनन्दनने कहा,—"परन्तु हमलोग तो स्थिर कर चुके कि अब दूसरे मकानमें जायँगे।"

इसबार किशोरीने गतिका बड़े करुणा भरी स्वरसे कहा,—" पता नहीं लगता, न जाने क्यों मेरा हृदय आपकी ओर आ होता जाता है और आपको दूर जाने देनेकी इच्छा नहीं हो नहीं कह सकती यह प्रेम है या हृदयका आवेग। परन्तु तो बुद्धिमान और विद्वान मनुष्य हैं। बताइये, यदि एक किसी पुरुषसे पवित्र बन्धुता करना चाहे तो इसमें क्या है ?"

उसमें हिलनेकी शक्ति न थी। किशोरीके सामनेसे उठ जानेमें न जानें क्यों उसे संकोच मालूम होता था। सम्भव है, कि यह उसके हृदयकी दुर्बलता अथवा सभ्यताका लिहाज़ हो।

किशोरी उसकेइन भावोंको अच्छी तरह देखती ओर समझती थी। कुछ देरतक ध्यानसे रघुनन्दनकी ओर देखकर उसने कहा,—"रघुनन्दन बाबू! आप तो बच्चोंसी बातें करते हैं। पाप-पुण्य क्या पदार्थ है? पाप-पुण्य भी अवस्थानुकूल हुआ करता है। क्या पर-पीड़न पाप नहीं है? मैं एक अबला होकर आपसे निःस्वार्थ बन्धुताकी भिक्षा माँगती हूं। मेरा हृदय आप पर अनुरक्त है, मेरे प्रेमकी उपेक्षाकर क्या आप मेरे हृदयमें कष्ट नहीं पहुंचाते? क्या आप मुझे पीड़ा नहीं देते? अतः क्या आप पाप नहीं कर रहे हैं? जिसे आप पाप कहते हैं, वही समय पाकर पुण्य हो जाता है। कोई आदमी फांसी जा रहा है, उसे बचानेके लिये झूठ बोलना पाप नहीं है। किसी हत्यारेसे किसी अबला गो-जातिकी रक्षाके लिये असत्य भाषण क्या पाप है? फिर मेरे आपके निःस्वार्थ सम्बन्धमें तो पापका लेश भी नहीं है।"

इतना कह किशोरी एक तीव्र कटाक्ष करती हुई उठ खड़ी हुई। उसने एकाएक आगे बढ़कर रघुनन्दनका हाथ पकड़ लिया। किशोरीके हाथ पकड़ते ही रघुनन्दनके शरीरमें मानो बिजली दौड़ गई। वह भी साथ ही उठ खड़ा हुआ। किशोरीने अपने उसका हाथ दबाते हुए कहा,—"आखिरी, रघुनन्दन बाबू!

अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तय्यार हूं। मेरा जो कुछ है, सब आपका है, इसके बदले चाहती हूं, केवल आपसे प्रेम-भिक्षा।"

रघुनन्दनका माथा घूम गया। एक ओर एक सुन्दरी रमणी उससे प्रेम-भिक्षा मांग रही थी, दूसरी ओर हृदयमें आत्माने एक विलक्षण हलचल मचा रखी थी। आजतक ऐसी हलचल, ऐसी धड़कन उसके हृदयमें कभी उत्पन्न न हुई थी। यह धड़कन उसके मस्तिष्कको और भी खराब कर रही थी।

रघुनन्दनका समूचा शरीर कांप रहा था। वह कोई उत्तर दिया चाहता था; परन्तु उसके मुंहसे शब्द न निकलते थे। इसी समय उसे एकाएक लीलावतीका मनोहर मुखमण्डल स्मरण हो आया। उसने कांपते हुए स्वरमें कहा,—"देखो, मुझे क्षमा करो, मैं मनुष्य हूं। मुझे पिशाच न बनाओ। मैं पर स्त्रीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं किया चाहता।"

किशोरीने झटककर उसका हाथ छोड़ दिया और उसी स्थान पर जमीनमें धमसे बैठ गई। इसके बाद लगातार उसकी आँखोंसे अश्रु-धारा बहनी आरम्भ हो गई। फिर रुदन स्वर उत्पन्न हुआ। किशोरी फूट फूटकर रोने लगी। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंसे मोतियोंसी बड़ी बड़ी बूंदे टपकने लगीं, आँखें लाल हो गईं, हिचकियाँ बँध गईं।

रघुनन्दन एकाएक उसकी यह अवस्था देखकर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। आजतक ऐसी घटनासे उसे कभी पाला न पड़ा था। कुछ देरतक वह उसकी ओर देखता रहा। इस

समय उसे यह भी भय हो रहा था, कि यदि हरिदास आ
तो उसे अत्यन्त लज्जित और अपमानित होना पड़ेगा। अ
उसने बड़ी नम्रतासे कहा—"देखो, कोई देखेगा तो क्या कहे
अब तुम रो मत। मुझे बड़ा कष्ट होता है। अब तुम ऊपर जा
हरिदासजी आयेंगे तो क्या कहेंगे?"

किशोरी रोती रोती ही बोली,—"नहीं, आप यदि मेरी बात
स्वीकार करेंगे तो मैं न जाऊँगी। जो होना हो सो हो, वे क्या
करेंगे?"

रघुनन्दनने कहा,—"अब दो-चार दिवसके लिये मुझे क्यों
अपमानित कराती हो, मुझे क्षमा करो। मुझमें तुम्हारी आज्ञा
पालन करनेकी शक्ति नहीं है।"

किशोरी इतना सुनते ही आँखें पोंछ झिझककर उठ खड़ी
हुई। बोली,—"अच्छा, जब आप नहीं ही मानते तब देखा जा
परन्तु स्मरण रखिये, यह अच्छा नहीं करते। स्त्री-जाति
अबला न समझ लीजिये, यह सबला भी हो सकती है।"

इतना कहकर किशोरी वहाँसे हटना ही चाहती थी, कि
एकाएक दरवाज़ा खुल गया और हरिदास सामने आ खड़े हुए।

हरिदासको देखते ही रघुनन्दनका चेहरा सूख गया। उसकी
दृष्टि नीची हो गई। अपराध न करने पर भी अपराधी
भाँति वह खड़ा हो गया। उसकी आँखोंमें इतनी शक्ति न थी
कि वह हरिदासकी ओर देखे।

इसी समय हरिदासने आगे बढ़कर कहा, —"क्यों रघुन

बाबू! यह क्या हो रहा है? मैं तो समझता था, कि आप एक भले आदमी हैं; परन्तु आपके यह कैसे लक्षण! और तुम यहाँ क्यों आई थीं?"

रघुनन्दनके मुँहसे कोई उत्तर न निकला; परन्तु किशोरी सिंहिनीकी भाँति गरजकर बोली,—""यह आप कैसा प्रश्न कर रहे हैं? क्या किसीसे मिलने और बातें करनेका भी मुझे अब अधिकार नहीं है।"

हरिदास भी बिगड़ उठे, बोले,—"तुम्हें एकान्तमें पर पुरुषसे बातें करनेका अधिकार किसने दिया?"

किशोरी बोली,—"तुमने—और दूसरा कौन देगा? तुम्हें क्या उस समय लज्जा न आयी थी, जब मेरे यहाँ निमन्त्रित आई हुई गुलाबसे घुल घुलकर बातें कर रहे थे। हा! पुरुष-जातिकी इस निर्लज्जताका भी क्या कोई ठिकाना है?"

हरिदासने इस बातका कोई उत्तर न देकर कहा,—"रघुनन्दन बाबू! मैं नहीं जानता था, कि आपका ऐसा चरित्र है। आपको मैंने ऐसा विषधर सर्प न समझा था।"

इतनेपर भी रघुनन्दन कोई उत्तर न दे सका; परन्तु उसके बदले किशोरी भी बोल उठी,—"उस निर्दोषसे क्यों पूछते हो? मेरी बातोंका उत्तर दो। मैं अपनी इच्छासे उनके पास आई हूँ, तुम्हारे व्यवहारोंने मेरे हृदयपर बड़ा आघात पहुँचाया है। मैंने अपना जो प्रेम तुम्हें अर्पण किया था; उसका तुमने दुर्व्यवहार किया है। तुम अब मेरी दृष्टिमें हीनसे हीनतर हो गये

हो ?" इसके बाद रघुनन्दनकी ओर देखकर बोली,—"रघुन
बाबू ! आपसे मैंने निःस्वार्थ प्रेम भिक्षा माँगी है। मैंने
आपसे पाप-पूर्ण प्रेमकी याचना नहीं की। मैं चाहती थी,
मेरे बन्धु बनकर सदा इसी मकानमें रहते ; परन्तु देखती हूँ,
आप मुझे पर-स्त्री समझकर उस प्रेमके प्रतिदानसे भी व
रखना चाहते हैं।

अस्तु, अब लाचार होकर अपनी बोत्ती आपको सुनाती
मैं अपने माता-पिताकी एकमात्र सन्तान हूँ, दैव दुर्विपाकसे
समय मेरा प्रथम विवाह हुआ, उसके कुछ दिवस बाद मेरे
परलोक सिधारे और छः मासके अनन्तर मेरे पति भी।
समय मैं अपनी माताके पास अकेली ही रह गई। इनका
माताके पास विशेष जाना आना था। इन्होंने मेरी माताको
तरहसे समझा बुझा कर उन्हें मेरा दूसरा विवाह करनेके
प्रस्तुत कर लिया। ये भी अपने घरके अकेले थे। मेरे
परिवारमें अन्य कोई नहीं था। अतः मेरे भविष्यकी ओर
कर मेरी माताने मेरा विवाह इनके साथ कर दिया।
इनको ही अपना समझकर इनके साथ रहने लगी ; परन्तु
अच्छी तरह और कितनी बार इसका प्रमाण मिल चुका है,
इनका चरित्र अच्छा नहीं है। जो कुछ आप देख रहे हैं,
सबकी अधिकारिणी मैं ही हूँ। इनकी कुछ भी सम्पत्ति
है और न ये कुछ उपार्जन ही कभी करते। तिसपर कुम
दोष इनमें बेतहर घुसा हुआ है। बताइये, इस अवस्थामें

इन्हें त्यागकर दूसरा विवाह कर लूँ, तो मैं किसी प्रकार भी अपराधिनी नहीं हो सकती ; क्योंकि ये मेरे लिये अनुपयुक्त तथा दुश्चरित्र हैं। जिस तरह पहली पतिके मर जानेपर मैं दूसरा विवाह करनेको बाध्य हुई ; उसी प्रकार इनको त्यागकर दूसरा विवाह कर लेनेमें भी मुझे क्या हानि है ? परन्तु नहीं, अब मैं उस पथपर नहीं जाया चाहती। मैं आपसे निःस्वार्थ बन्धुता चाहती हूँ। किसी एकका सहारा अवश्य चाहिये।" इतना कहकर किशोरी फिर फूट फूट कर रोने लगी।

इसबार रघुनन्दनमें बोलनेका कुछ साहस हो आया। उसने कहा,—"मान लिया, कि तुम ये तुम्हारे उपयुक्त नहीं हैं ; परन्तु इतने दिनों तक जब तुम्हारा इनका सम्बन्ध रह गया तब तुम्हें इन्हें त्यागना कदापि उचित नहीं है। तुम्हारी भी इसीमें बलिहारी है, कि तुम जिस तरह उनके पास रहती आई हो, उसी तरह उन्हें पति मानकर ही उनके पास रहो। और अपने सम्बन्धमें तो पहले ही कह चुका हूँ, कि मुझसे किसी प्रकारकी आशा न करो।"

किशोरीने बड़े दुःखसे कहा,—"अस्तु, आपकी इच्छा। एक दया कीजिये। अभी यह मकान छोड़कर न जाइये।"

रघुनन्दनने कहा,—"अच्छा जानकीशरणसे पूछ लूँ।"

किशोरी बोली,—"आह ! आपका हृदय भी कितना कठोर है ?"

रघुनन्दनने कहा,—"इसका परिणाम आगे चलकर मालूम होगा।"

इसके बाद किशोरी और हरिदास उठकर चले गये। रघुनन्दनने उन दोनोंको बहुत तरहसे समझा बुझा कर शान्त किया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद ।



गंगा-स्नान ।

आज निर्जला एकादशी थी। जबसे कालीचरण गायब हो गया था, तबसे जगदम्बाने एकादशीका व्रत करना आरम्भ कर दिया था, तिसपर आज निर्जला एकादशी थी। अतः जगदम्बा मोहनीके साथ गङ्गा स्नानके लिये चली।

पटना गङ्गा किनारे आज नर-नारियोंकी खासी भीड़ लगी हुई थी, जिधर देखिये उधर ही मनुष्यका मुण्ड ही दिखाई देता था। कोई स्नान कर रहा था, कोई संध्या पूजन और कोई वस्त्र पहन रहा था। इसी घाटकी बगलमें जनाना घाट था, उसमें अनेकानेक रमणियाँ स्नान कर रही थीं। एक मेलासा लगा हुआ था। जगदम्बाने पहले ही स्थिर कर लिया था, कि सवेरेके समय बड़ी भीड़ रहेगी, अतः दो पहर बाद स्नान करने जाऊँगी। इसी विचारसे दो पहरके बारह बज जाने बाद जगदम्बा मोहनीके साथ स्नान करने चली। परन्तु इस समय भी भीड़ कम न हुई थी।

इस घाटपर जानेके लिये पतली गलियोंमें होकर जाना पड़ता था। अभी जगदम्बा एक गलीमें मोहनीके साथ थोड़ी ही दूर अग्रसर हुई थी, कि दो मनुष्य सामनेसे आते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखते ही मोहनीने कहा,—"वह देखो, कमलेश्वर बाबू आ रहे हैं?"

इतना सुनते ही जगदम्बा सकुचाकर एक ओर खड़ी हो गई।

कमलेश्वर अपने उस साथीके साथ उसकी बगलसे आगे बढ़ गया। जगदम्बाने एकबार आँखें उठाकर देखा भी नहीं।

इसके बाद वह तेजीसे घाटकी ओर चली। वहाँसे स्नान कर अभी वह लौटना ही चाहती थी, कि घाटके बाहर ही फिर कमलेश्वर खड़ा दिखाई दिया। मोहनी फिर बोल उठी,—देखो, फिर वे खड़े हैं। मालूम होता है, ये तुम्हें देखनेके लिये ही खड़े हैं।"

परन्तु जगदम्बाने कोई उत्तर न दिया। वह सर झुकाये हुए उसी राहसे आगे बढ़ गई। इसी समय कमलेश्वरने मोहनीको पुकारकर कहा,—"मोहनी! एकबार मुझसे मिलना, कुछ आवश्यक कार्य है।"

मोहनीने पीछे घूमकर देखा और मुस्कुराई। घर आकर जगदम्बा बड़े सोचमें जा पड़ी। उसी दिनसे उसने गङ्गा स्नानको जाना भी त्याग दिया। परन्तु मोहनीसे उसने कुछ न कहा। मोहनीपर उसका सन्देह बढ़ता जाता था और एक प्रकारकी विपत्तिकी आशङ्कासे उसका हृदय रह रहकर काँप उठता था।

इसके दूसरे ही दिवस जब कि जगदम्बा सोकर उठी तो उसे अपने सिरहाने ही एक पत्र रखा हुआ दिखाई दिया। पत्रपर जगदम्बाका ही नाम लिखा था। उसने कुतुहलवश पत्र खोल डाला, पत्रकी प्रति-लिपि देनेकी हमें आवश्यकता नहीं है। परन्तु पाठकोंको इतना बता देना आवश्यक है, कि विधवाओंको दुर्द-

शाका उल्लेख करते हुए, उसमें उसे अपना विवाह करनेकी सलाह देनेके बहाने अपने हृदयका प्रेम दरसाया गया था ; परन्तु पत्र भेजनेवालेने उसमें अपना नाम न लिखा था।

जगदम्बा वह पत्र पढ़कर समझ गई, कि यह काम ईश्वरके सिवा दूसरेका नहीं है। इसबार उसे अपने रूपपर आपही घृणा उत्पन्न हो गई। वह मनही मन विचारने लगी, जब परमात्माको मुझे विधवा ही करना था, तब ऐसा रूप क्यों दिया, जिसे देखकर दूसरोंके मनमें कु-इच्छा जागरित हो। बहुत देरतक वह अपनी अवस्थापर विचार करती रहा। एकाएक उसका ध्यान इस विषयपर गया, कि यह पत्र यहाँ किस तरह आ पहुँचा। यद्यपि उसका मन गवाही दे रहा था, कि यह मोहनीका ही काम है ; परन्तु वह मनही मन फिर यह सोचती थी, कि मोहनीका इतना साहस न होगा, कि वह इस तरह किसी अपरिचितका पत्र यहाँ लाये। परन्तु इस विषयमें मोहनीसे एकबार पूछना उसने आवश्यक समझा और निराला पाते ही उसने मोहनीको पत्र दिखाकर पूछा,—"मोहनी! सच सच बता, यह पत्र मेरे सिहाने कौन रख गया।"

जगदम्बाकी भाव भङ्गी देखकर मोहनी कुछ सहम गई। बोली,—"मुझे क्या मालूम! गङ्गाजीकी कसम! दुहाई काली-जीकी। मुझे कुछ भी मालूम नहीं।"

जगदम्बाको पूरा पूरा विश्वास था, कि यह काम उसीका है। दूसरा कौन चिट्ठी यहाँ रख सकता है। इसीलिये उसने मोहनीसे

पूछा—"अच्छा, कमलेश्वर बाबूने तुझे बुलाया था, क्यों तू उनके पास गई थी ?"

मोहिनी बोली,—"झूठ क्यों बोलूँगी ? ज़रूर गई थी।"

जगदम्बाने कहा,—"उन्होंने ही बुलाया था।"

मोहिनी बोली,—"क्या बताऊँ, सुननेसे तुम रंज होगी।

जगदम्बाने कहा,—"नहीं, मैं रंज न होऊँगी।"

मोहिनी बोली,—"और किस लिये ? एक तुम्हारी बात। मानों तुम्हारे सिवा और उनके लिये कोई चर्चा हो नहीं है।"

जगदम्बा कुछ सोचमें जा पड़ी। बोली,—"हूं ! तब यह पत्र भी उनका ही है और लानेवाला भी तेरे सिवा कोई दूसरा नहीं है।"

इस बार मोहिनी मुस्कुराई। बोली,—"मैं झूठ नहीं बोलती, चिट्ठी मैं उनके यहाँसे नहीं लाई हूँ। नहीं कह सकती, कौन यहाँ लाकर रख गया।"

जगदम्बा और भी आश्चर्य्यमें जा पड़ी। बोली,—"ख़ैर कोई भी लाकर रख गया हो, उससे मुझसे मतलब नहीं; परन्तु तू काम मेरे यहाँ करती है और वहाँ जाती क्यों है ? मोहिनी ! तेरे ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। मैं भाभासे सब हाल कहती हूँ।"

मोहिनी बोलो,—"देखो मुझपर रंज होनेसे क्या लाभ है ? मेरा इसमें क्या दोष है ?"

जगदम्बा कुछ बिगड़कर बोली,—"तेरा क्या दोष है ? तू ये समाचार लेकर मेरे पास क्यों आती है ? मैं उनका नाम भी

नहीं सुनना चाहती। कुल वधुओंके घरकी मजदूरिनोंकी क्या यही दशा रहनी चाहिये? अच्छा जा, परन्तु सावधान! आजसे कभी ये बातें अपने मुँहपर न लानी।"

मोहिनी उदास चित्तसे वहाँसे चली गई। इसके कुछ ही दिन बाद यह समाचार कुछ विकृत रूप धारणकर कमलेश्वरके कानोंमें जा पहुँचा। उसने कहा,—"एक साधारणसी स्त्रीको यह स्पर्द्धा! अच्छा, देखूँगा यह कैसी सती साध्वी है।"



बाईसवाँ परिच्छेद ।

रहस्योद्घाटन ।

कमलेश्वरने डिगरी प्राप्त कर ली ; परन्तु डिगरी इजरा कराने का उसे शीघ्र साहस न होता था। न जाने कौनसी आशङ्का उसके हृदयको मसोस रही थी। अब मुकद्दमे और डिगरी हो जानेका समाचार भी चारों ओर फैल गया था। इस बार लीलावतीने जोर देकर सब समाचार रघुनन्दनको लिखे। यह पत्र ठीक उसके दूसरे दिवस रघुनन्दनको मिला, जिस रातमें किशोरीसे उसकी बातें हुई थीं। अतः अब रघुनन्दनका एक दिवस भी कलकत्तेमें रहना सम्भवपर न था। इसलिये उसने हरिदासको बुलाकर अपने पटने जानेकी सूचना दे दी और हरिदासने किशोरीको।

किशोरी यह समाचार सुनते ही नीचे उतर आई। ऐसा मालूम होता था, मानो उसका हृदय यह समाचार सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा है।

इस समय रघुनन्दन अपनी कोठरीमें बैठकर अपनी यात्राकी तय्यारियाँ कर रहा था। रघुनन्दनको देखते ही किशोरीने बड़े आवेगसे कहा,—"क्या आप आज जा रहे हैं ?"

रघुनन्दनने कहा,—"हाँ, मैं जा रहा हूं।" इतना कहकर उसने सरलतासे अपने जानेका कारण भी बता दिया।

किशोरी रघुनन्दनकी सरल बातें सुनकर कुछ देरतक एकटक दृष्टिसे उसकी ओर देखती रही। इसके बाद बोली,—"पर मुझे क्या आज्ञा देते हैं? कलकी अवस्था तो आपने देखी और मेरा पूरा पूरा परिचय भी आपको मालूम हो गया। मैं सत्य और धर्म्म पूर्वक कहती हूँ, कि मेरी कोई कु-वासना नहीं है। आपको मैं अपना बन्धु और अपना गुरु समझती हूँ।"

रघुनन्दन बोला,—"मुझे जो कहना था, सो कह चुका। अब कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है।"

किशोरी बोली,—"अच्छी बात है, आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये; परन्तु एक बात स्मरण रखिये, कि प्रेमकी प्रतिहिंसा भी बड़ी भयानक होती है।"

रघुनन्दनने कहा,—"सम्भव है; परन्तु मैंने तुम्हारा कुछ अपकार नहीं किया है। वास्तवमें तुम्हें हरिदासका साथ किसी अवस्थामें भी त्यागना उचित नहीं है; क्योंकि एक तो दुर्भाग्यवश तुम्हें दूसरा विवाह करना पड़ा है। अब क्या उन्हें त्यागकर तुम तीसरा विवाह किया चाहती हो?"

किशोरीने कहा,—"इसमें हर्ज ही क्या है? यह अटक तो तबतक ही रहती है, जबतक किसी दूसरेका संसर्ग नहीं होता। मेरे लिये तो हरिदास अब जीवित ही मृतकके समान हैं; क्योंकि जब पति-पत्नीमें प्रेम न रहा और पति अपनी स्त्रीको छोड़कर दूसरेसे प्रेम करने लगा तो वह पति नहींके समान ही है।"

रघुनन्दन उसका यह उत्तर सुनकर काँप उठा। बोला,—

"नहीं नहीं, ऐसा न कहो। कुल-वधुओंके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हो जाना बड़ा अनिष्टकर है।"

छूटते ही किशोरी बोली,—"और पुरुषोंके लिये अन्य स्त्रियोंसे प्रेम करना अनिष्टकर और पाप-जनक नहीं है? एक स्त्रीके मर जाने अथवा जीवित रहनेपर भी दूसरा विवाह करना पाप-पूर्ण नहीं है। बलिहारी है, इस स्वार्थपरता की।"

रघुनन्दनने कहा,—"यह अवश्य स्वीकार करता हूँ, कि हरिदासको ऐसा करना उचित नहीं है; परन्तु साथ ही तुम्हें भी उनके साथ कोई दूसरा व्यवहार करना कदापि उचित नहीं है। देखो, जिस तरह अन्य स्त्रीसे प्रेम करनेके कारण तुम हरिदासपर इतनी अप्रसन्न हो रही हो। जरा विचारो तो सही, कि यदि तुम्हारे कथनानुसार मैं भी तुमसे प्रेम कर लूँ तो मेरी स्त्रीके हृदयमें कैसे विचार उत्पन्न होंगे? क्या वह प्रतिहिंसा लेनेके लिये तय्यार नहीं हो सकती है। नहीं नहीं, किशोरी, मैं मनुष्य हूँ। अबतक कभी पाप-पथपर अग्रसर नहीं हुआ—अब मुझे शैतान बनानेकी चेष्टा न करो। मुझे क्षमा करो। मैं अपनी परम साध्वी लीलावतीके हृदयमें कष्ट नहीं पहुँचाया चाहता।"

किशोरीकी दोनों आँखोंसे, मानो इतना सुनते ही आग निकलने लगी। वह गरज कर बोली—"अच्छा, देखूंगी। वह कितनी साध्वी है।"

इतना कहकर किशोरी तेजीसे वहाँसे उठकर चली गई। रघुनन्दन आश्चर्य्यसे उसके चेहरेकी ओर देखता ही रह गया।

तेईसवाँ परिच्छेद ।

परिवर्त्तन ।

उसी दिवस शामकी गाड़ीसे रघुनन्दन पटनेकी ओर रवाना हो गया । उसके दूसरे ही दिवस जानकीशरणने भी वह मकान त्याग दिया । रघुनन्दन यथा समय पटने आ पहुँचा ।

रघुनन्दनके वहाँ पहुँचनेका समाचार थोड़ी ही देरमें चारों ओर फैल गया । कमलेश्वरने सुना, कि रघुनन्दन आ गया है और शिवनन्दनने भी ; परन्तु शिवनन्दन उससे मिलने न आया ।

रघुनन्दनकी माता शिवनन्दनके साथ ही थीं । अतः रघुनन्दन घर आनेके साथ ही पहले उनसे मिलनेके लिये गया । उसने वहाँ जाकर अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया । अभी वह प्रणाम कर उठा ही था, कि एक ओर बैठी हुई निराभरणा छोटी बहूपर उसकी दृष्टि जा पड़ी । रघुनन्दनने एकाएक चौंककर अपनी माताकी ओर देखा । माताके चेहरेपर दृष्टि पड़ते उसने देखा, कि उसका चेहरा दुःख और कष्टसे मुरझाया हुआ है । घरकी दशा भी कुछ अस्त-व्यस्तसी दिखाई दी ।

यह दशा देखकर रघुनन्दनने पूछा,—"माँ, तुम लोगोंकी यह कैसी दशा हो रही है ?"

प्रियम्वदा बाईने कहा,—"जो भाग्यमें बदा है सो भोग रही हूँ ।"

रघुनन्दनने पूछा,—"आखिर इसका कारण क्या है?"

प्रियम्वदा बाई बोली,—"सब कर्म-भोग है; परन्तु तुम्हारा क्या हाल है? तुमको क्या जरूरत पड़ी है, जो हमलोगोंकी खोज-खबर ली……"

रघुनन्दनने कहा,—"माँ! मेरा क्या अपराध है? मैंने कई पत्र भेजे; परन्तु एकका भी उत्तर न गया। तुम्हें तो मैंने पहले ही कहा था, कि मेरे घर चलो; परन्तु तुमने न माना। अच्छा, बहूके सब जेवर क्या हो गये।"

प्रियम्वदा बाईने क्रोध-भरी दृष्टिसे घूमकर अपनी बहूकी ओर देखा। फिर बोली,—"सब बिक-बिकाकर समाप्त हो गये।"

रघुनन्दनने कहा,—"इसी लिये शिवनन्दनको मैं अलग नहीं करना चाहता था। मैं पहलेसे ही जानता था, कि बड़े आदमियों-की सङ्गतिमें रहकर उसमें बड़ा आदमीपन आ गया है; परन्तु पैदा करनेकी शक्ति नहीं आयी है? क्यों, उसे तो कमलेश्वरके यहाँसे पचास रुपये मासिक मिलते थे, फिर यह दशा क्यों हुई? अच्छा, वह कहाँ है?"

शिवनन्दन इस समय घरमें ही बैठा था; परन्तु अपने भ्राता-के सम्मुख आनेका उसे साहस न होता था। इसी लिये वह चुपचाप अपनी कोठरीमें छिपा बैठा था। प्रियम्वदा बाईने कहा,—"कहीं होगा, अब उसको कुछ कहकर क्या होगा। जो होना था, सो तो हो गया; परन्तु तूही बता, कितनी लज्जाकी बात है, जात-बिरादरीमें जाना आना तो पड़ता ही है, परन्तु यदि पड़ी

तेईसवाँ परिच्छेद।

परिवर्त्तन।

उसी दिवस शामकी गाड़ीसे रघुनन्दन पटनेकी ओर रवाना हो गया। उसके दूसरे ही दिवस जानकीशरणने भी वह मकान त्याग दिया। रघुनन्दन यथा समय पटने आ पहुँचा।

रघुनन्दनके वहाँ पहुँचनेका समाचार थोड़ी ही देरमें चारों ओर फैल गया। कमलेश्वरने सुना, कि रघनन्दन आ गया है और शिवनन्दनने भी; परन्तु शिवनन्दन उससे मिलने न आया।

रघुनन्दनकी माता शिवनन्दनके साथ ही थीं। अतः रघुनन्दन घर आनेके साथ ही पहले उनसे मिलनेके लिये गया। उसने वहाँ जाकर अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया। अभी वह प्रणाम कर उठा ही था, कि एक ओर बैठी हुई निराभरणा छोटी बहूपर उसकी दृष्टि जा पड़ी। रघुनन्दनने एकाएक चौंककर अपनी माताकी ओर देखा। माताके चेहरेपर दृष्टि पड़ते उसने देखा, कि उसका चेहरा दुःख और कष्टसे मुरझाया हुआ है। घरकी दशा भी कुछ अस्त-व्यस्तसी दिखाई दी।

यह दशा देखकर रघुनन्दनने पूछा,—"माँ, तुम लोगोंकी यह कैसी दशा हो रही है?"

प्रियम्वदा बाईने कहा,—"जो भाग्यमें बदा है सो भोग रही हूँ।"

रघुनन्दनने पूछा,—"आखिर इसका कारण क्या है ?"

प्रियम्वदा बाई बोली,—"सब कर्म-भोग है ; परन्तु तुम्हारा क्या हाल है ? तुमको क्या जरूरत पड़ी है, जो हमलोगोंकी खोज-खबर ली······"

रघुनन्दनने कहा,—"माँ ! मेरा क्या अपराध है ? मैंने कई पत्र भेजे ; परन्तु एकका भी उत्तर न गया। तुम्हें तो मैंने पहले ही कहा था, कि मेरे घर चलो ; परन्तु तुमने न माना। अच्छा, बहूके सब जेवर क्या हो गये।"

प्रियम्वदा बाईने क्रोध-भरी दृष्टिसे घूमकर अपनी बहूकी ओर देखा। फिर बोली,—"सब बिक-बिकाकर समाप्त हो गये।"

रघुनन्दनने कहा,—"इसी लिये शिवनन्दनको मैं अलग नहीं करना चाहता था। मैं पहलेसे ही जानता था, कि बड़े आदमियों-की सङ्गतिमें रहकर उसमें बड़ा आदमीपन आ गया है, परन्तु पैदा करनेको शक्ति नहीं आयी है ? क्यों, उसे तो कमलेश्वरके यहांसे पचास रुपये मासिक मिलते थे, फिर यह दशा क्यों हुई ? अच्छा, वह कहाँ है ?"

शिवनन्दन इस समय घरमें ही बैठा था ; परन्तु अपने भ्राता-के सम्मुख आनेका उसे साहस न होता था। इसी लिये वह चुपचाप अपनी कोठरीमें छिपा बैठा था। प्रियम्वदा बाईने कहा,—"कहीं होगा, अब उसको कुछ कहकर क्या होगा। जो होना था, सो तो हो गया ; परन्तु तूही बता, कितनी लज्जाकी बात है, जात-बिरादरीमें जाना आना तो पड़ता ही है, परन्तु यदि बड़ी

वह इतना जानकर भी अपने जेवरोंमेंसे दो चार उसे दे देती तो क्या घरमें दरिद्र लग जाता। इसी लिये वह विचारी कहीं घरसे बाहर नहीं जाती।"

रघुनन्दनने कहा,—"अवश्य देना था। तुमने मंगा लिया होता।"

प्रियम्बदा बाई बोली,—"ऐसा भी क्या होता है, जब उसको आँखोंमें ही इतनो शोल नहीं तब मैं कैसे मँगाती?"

रघुनन्दनने कहा,—"यह तो बड़ी खराब बात है? अच्छा, आज मैं पूछूंगा और अवश्य दण्ड दूँगा।"

इस बार छोटी बहूसे चुप न रहा गया। उसने पीछे मुँह फेरे ही बहुत धीमे स्वरमें कहा,—"नहीं, उनका दोष नहीं है। राम बाबूके यहाँ निमन्त्रणमें जानेवाले दिन, उन्होंने मुझे अपने आधे जेवर दिये थे; परन्तु मैंने लेना स्वीकार नहीं किया। शायद यहाँ आनेसे फिर उन्हें लौटा न सकती।"

प्रियम्बदा बाईने बिगड़ कर कहा,—"फिर तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं?"

चम्पावतीने कोई उत्तर न दिया। चुप हो रही। रघुनन्दनने कहा,—अस्तु, अब तुमलोगोंको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। खैर, यह मुकद्दमा कैसा है? क्या इतने रुपये लेकर भी शिवनन्दनने कमलेश्वरके रुपये नहीं चुकाये?"

इस बार प्रियम्बदा बाईने झल्लाकर कहा,—"चुकाता कहाँसे! खाता क्या? तूने कितने रुपये उसे दिये थे ही?

अपनी माताको क्रोधित देखकर रघुनन्दनने बड़ी नम्रतासे कहा,—"माँ! तुम रंज क्यों होती हो? तुम्हारे सामने ही तो चार आदमियोंको बैठाकर बटवारा कर दिया था।"

प्रियम्वदा बाई बोलीं,—"किया था या नहीं किया था, सो तू जान और तेरा धर्म्म जाने। मैं अनपढ़, यह सब क्या समझ सकती हूँ।"

इतना सुनकर रघुनन्दन चुप हो गया। वह समझ गया, कि मेरी अनुपस्थितिमें माके खूब कान भरे गये हैं, इसी लिये यह इतना रंज हो रही हैं। अतः उसने बड़ी नम्रतासे कहा,—"माँ! मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है। अपने जानते धर्म्म-पूर्वक ही सब काम किये हैं। आगे शिवनन्दनका भाग्य! जो जैसा करेगा, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ेगा।"

प्रियम्वदा बाई बोलीं,—"सो तो ठीक ही है; परन्तु शिवनन्दन तो कहता है, कि उसको धोखा दिया गया है। उसको आधा हिस्सा नहीं दिया गया है।"

इस बार रघुनन्दनको बड़ा दुःख हुआ। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने दुःख जर्ज्जरित स्वरमें कहा,—"माँ! क्या तुम भी ऐसा ही विश्वास करती हो?"

प्रियम्वदा बाईने कहा,—"मेरे लिये तुम दोनों हो एक समान हो। मैं कैसे कुछ कह सकती हूं; परन्तु कभी कभी स्त्रियोंके फेरमें पड़कर मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है और विशेषकर पढ़ी लिखी स्त्रियाँ बड़ी ही भयानक होती हैं।"

रघुनन्दन समझ गया, कि यह आक्षेप लीलावती पर है। अस्तु अब उत्तर देना उचित न समझकर उसने कहा,—"अच्छा, अभीतक मैंने स्नान नहीं किया है। अब जाऊँ, जाकर स्नान कर आऊँ। तुम एकबार शिवनन्दनको मेरे पास भेज देना। वह जो कुछ कहेगा, और भी दे दूँगा। आखिर तो वह मेरा भाई ही है।"

इतना कहकर वह वहाँसे बाहर निकल आया। अभी कुछ ही दूर आगे बढ़ा होगा, कि मुहल्लेके कई मनुष्य मिले। सभी उसे दोष देने लगे, कि उसने अपने भाईको भी घरसे निकाल दिया और पिताकी सम्पत्तिका पूरा पूरा हिस्सा भी न दिया। रघुनन्दनने चुपचाप सबकी बातें सुन लीं और कोई उत्तर न देकर चुपचाप घर लौट आया।

भोजनसे निश्चिन्त होकर वह कमलेश्वरके यहाँ जा पहुँचा। इस समय कमलेश्वर बैठा हुआ; कुछ कागज पत्र देख रहा था। एकाएक अपने बैठकखानेमें रघुनन्दनको देखकर वह चौंक उठा,—उसने बड़ी खातिरदारीसे उसे बैठाकर पूछा,—"आप यहाँ कब आये?"

रघुनन्दनने कहा,—"आज ही आया हूँ। आपलोग तो सकुशल हैं।"

कमलेश्वरने कहा,—"हाँ, सब ईश्वरकी कृपा है। परन्तु अभी तो आपको परीक्षा समाप्त नहीं हुई।"

रघुनन्दनने कहा,—"दुःख और विरक्ति भी मनुष्यकी परीक्षाके

लिये ही आते हैं। वह परीक्षा तो समाप्त नहीं ही हुई है, दूसरी परीक्षाका समय भी उपस्थित है।"

कमलेश्वर कुछ संकोचमें आ गया। वास्तवमें रघुनन्दनसे सभी अच्छा व्यवहार करते थे। अतः उसने कहा,---"आप निर्विघ्न परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे ; परन्तु मुझे क्षमा कीजियेगा। मैं कदापि नालिश नहीं करता ; परन्तु आप ही विचार लीजिये, कि रुपये वसूल होनेका दूसरा क्या उपाय था ?"

रघुनन्दनने कहा,-- "इसके लिये मैं आपको दोष नहीं देने आया हूँ। आपने उचित ही किया है ; परन्तु एक बार मुझसे पूछ लेना आवश्यक था। आपने मुझसे पूछा भी नहीं और नालिश कर दी, यही कुछ अनुचित हुआ ; परन्तु सम्भव है, कि इसमें भी आपने अपना कुछ लाभ ही सोचा होगा। सच्ची बात तो यह है, कि इसमें भी आप दोषी नहीं हैं। आपका सब तरहसे अपने रूपये वसूल करनेका अधिकार है।"

कमलेश्वरने आश्चर्य्यसे रघुनन्दनके चेहरेकी ओर देखकर कहा,—"मुझे दूसरा कोई पथ न मिला।"

रघुनन्दनने कहा,—"ठीक ही है। परन्तु मेरी प्रार्थना यह है, कि मुकद्दमा लड़कर आपने जितने रूपये वकील मुख्तार और अन्य अमलोंको दिये, वे तो वृथा ही गये ?"

कमलेश्वरने कहा,—"क्यों, मैं तो डिगरी प्राप्त कर चुका।"

रघुनन्दनने कहा,---"डिगरी तो आपको हर हालतमें मिली ही है। शिवनन्दन आपका मित्रहै, अपने मित्रको आपने रुपये

दिये। मित्रके साथ कोई दगाबाजी तो करता ही नहीं, अतः आपने भी शिवनन्दनको रुपये दिये बिना उसपर झूठी नालिश नहीं की है। दोष शिवनन्दनका है; जिसने मित्रता कर भी आपसे रुपये लिये और फिर उसे समय पर न चुका दिया। क्या शिवनन्दन आपका रुपये देनेसे इन्कार करता है?"

कमलेश्वरने कहा,—"नहीं, पर वे कहते हैं, कि मेरे पास रुपये नहीं हैं और भाईने पिताकी सम्पत्तिका मुझे पूरा हिस्सा नहीं दिया। यही बात उन्होंने अदालतमें भी कही है और यही कारण है, कि मुझे आपको भी इसमें शामिल करना पड़ा है।"

रघुनन्दनने कहा,—"सम्मिलित तो मैं पहलेसे ही हूँ; क्योंकि मेरा और रघुनन्दनका रक्तका सम्बन्ध है, हम सहोदर हैं।"

कमलेश्वर बोला,—"तब आप भी मेरा रुपया देनेके लिये बाध्य हैं। साथ ही यदि आप यह रुपया लेना अन्याय कहें तो मैं छोड़ देनेके लिये तय्यार हूँ।"

रघुनन्दनने कहा,—"मैं कैसे अन्याय कहूँगा? आप दोनों अभिन्न हृदय मित्र हैं, उसने आपके यहाँ पचास रुपये मासिकपर नौकरी की। आपने अवश्य ही उसे रुपये दिये होंगे; परन्तु इतना अवश्य कहूंगा, कि अदालतकी शरणमें जानेकी आपको आवश्यकता न थी। क्योंकि यह अदालती जाल हमें निर्बल बना रहा है। बताइये, जितने रुपये आपने खर्च किये हैं, क्या आप समझते हैं, कि वे सभी वसूल हो जायेंगे।"

कमलेश्वर बोला,—"कदापि नहीं, परन्तु दूसरा उपाय क्या था ?"

रघुनन्दनने कहा,—"पञ्चायत। आप अपने जातिके पँचोंकी शरणमें जाते तो क्या उनमें न्याय करनेकी शक्ति न थी।"

कमलेश्वर बोला,—"उनका न्याय मानता ही कौन है ?"

रघुनन्दन—"आज पञ्चायत आपको जातिच्युत कर दे तो आप मानेंगे या नहीं ?"

कमलेश्वर,—"अवश्य मानूँगा।"

रघुनन्दन,—"फिर लेन-देनके सम्बन्धमें पञ्चायतकी बात क्यों मान्य न होगी।"

कमलेश्वरने कोई उत्तर न दिया। बोला,"—जो होना था सो हो गया। डिगरी प्राप्त हो गई है। आपकी ही राह देख रहा था।"

रघुनन्दनने कहा,—"मैं वकालत पढ़ रहा हूँ। कानूनमें हर जगह नई नई दलीलें निकल आती हैं, गवाहियोंपर न्याय हो रहा है, आज यदि गवाह अधिक मेरे वशमें हो जायें तो आप मुकद्दमा हार जायँगे। डिगरी आपको मिल गई है; परन्तु अब भी लड़नेकी बहुत जगह है। मुझे सम्मन नहीं मिला। मुकद्दमेकी मुझे कोई खबर नहीं, कानून अभी मुझे लड़नेकी जगह दे रहा है, अपीलका दरवाज़ा खुला है। अभी बहुतसे झमेले बाकी हैं, परन्तु मैं यह सब कुछ नहीं करूँगा। मैं अदालतकी कार्रवाइयोंकी नकल लेने भी न जाऊँगा। मेरा यह झमेला तो पंचायतमें ही तय होगा।"

कमलेश्वरने कहा, --"आपकी जो इच्छा हो सो करें, मुझे रुपये मिल जाने चाहियें।"

रघुनन्दनने कहा,—"अच्छी बात है।"

इतना कहकर रघुनन्दन वहाँसे उठकर चला आया। घर आकर उसने शिवनन्दनको बुला भेजा। कई बार मनुष्य भेजे परन्तु शिवनन्दन न आया। उसे बड़ा आश्चर्य्य था, कि इतना अपराध करनेपर भी रघुनन्दनने उसको किसीसे शिकायत नहीं की। यह भी नहीं कहा, कि भाईका लिया हुआ रुपया मैं न चुकाऊँगा। क्या मुझसे पूछकर यह रकम दी थी? अस्तु जब बहुत कुछ बुलानेपर भी शिवनन्दन न आया और न उसने अपनी इच्छा ही किसीके द्वारा प्रकट की तो लाचार रघुनन्दनने दूसरे ही दिवस जातिके मनुष्योंको एकत्र किया और कमलेश्वरको बुलाकर इस झमेलेको निपटा देना ही स्थिर किया।

रघुनन्दन कहता था,—"शिवनन्दनका कथन है, कि भाईने मेरे साथ अन्याय किया है। मेरे पिताकी सम्पत्तिका अर्द्ध भाग नहीं दिया है, यदि वह पंचोंके सामने यह कह देगा तो मैं उसी समय कमलेश्वरके सब रुपये अपनी सम्पत्ति बेचकर चुका दूँगा।"

यह बात कई मनुष्योंने सुनी। शिवनन्दन और कमलेश्वरके कानोंमें भी जा पहुँची। कमलेश्वरने कहा, --"वह अदालतमें कह चुका है, अब क्यों न कहेगा? उसी समय उसने शिवनन्दनको बुलाकर समझाया। शिवनन्दनने कहा, —"अवश्य कहूँगा, इसमें भी क्या कोई सन्देह है?"

दूसरे ही दिवस पंच एकत्र हुए। कमलेश्वर अपने उन जातिवालोंके साथ जिन्होंने कमलेश्वरके पक्षमें गवाही दी थी और जबर्दस्ती शिवनन्दनको भी लिये वहाँ जा पहुंचा। इस समय कमलेश्वरका चेहरा प्रसन्न हो रहा था, रघुनन्दन गम्भीर; परन्तु शिवनन्दनका चेहरा मुर्झाया हुआ था। जब सब पञ्च एकत्र हो गये, तब रघुनन्दनने कहा,—"आपलोगोंमेंसे कई सज्जनोंके सम्मुख मैंने पिताकी सम्पत्तिका आधा भाग शिवनन्दनको दे दिया था। अब सुना है, कि शिवनन्दन कहता है, कि मेरे साथ अन्याय किया गया और पूरा हिस्सा न मिला। इधर कमलेश्वर बाबूने शिवनन्दन तथा मुझ पर कई हज़ार रुपयोंके पावनेकी नालिश की है। अतः मैं सब पँचोंके सम्मुख प्रतिज्ञाकर कहता हूँ, कि यदि शिवनन्दन मेरे पैर छूकर यह कह दे, कि मेरे भाईने मेरे साथ बेईमानी की है, तो मैं जिस तरह होगा, कमलेश्वर बाबूका रुपये दे दूँगा।"

इतना कहकर रघुनन्दन अपना एक पैर आगे बढ़ाकर खड़ा हो गया। सब पँचोंमें सन्नाटा छा गया। शिवनन्दन आगे बैठा हुआ था, कमलेश्वर तथा उसके साथी उसके पीछे। सभी उसको पीछेसे धक्का देने लगे। कहने लगे,—"जाओ, अब यह मौका क्यों छोड़ते हो? इससे बढ़कर और कौनसा अवसर आयगा?"

परन्तु शिवनन्दन अपनी जगहसे टससे मस न होता था। ऐसा मालूम होता था, मानो उनके कानमें कोई शब्द ही नहीं

जाता। यह अवस्था देखकर रघुनन्दनने फिर कहा,—"अब कहते क्यों नहीं? मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर भी तुम्हारा उद्धार करूँगा।"

परन्तु शिवनन्दन न टला। इस बार कमलेश्वरने झल्लाकर कहा,—"जो बात तुम अदालतमें कह चुके हो, वही यहाँ कहते क्यों शरमाते हो? न कहो, मेरा रुपया चुकाओ।"

इस बार शिवनन्दनने कुछ क्रुद्ध दृष्टिसे कमलेश्वरकी ओर देखा। इसके बाद एकाएक रघुनन्दनके पैरोंपर लोट पड़ा। बोला,—"मैं तुम्हारे पैर छूकर सत्य और धर्म्म-पूर्वक कहता हूँ, भय्या, कि आजसे कभी तुम्हारी आज्ञाके विपरीत न चलूँगा। कभी दुर्व्यसनोंमें न पड़ूँगा, कभी बड़े आदमियोंके असार प्रलोभनोंमें न आऊँगा। तुमने उस दिवस क्या, इस जीवनमें अन्याय नहीं किया। तुमने मेरे भागसे अधिक मुझे दिया है।"

इतना कहते कहते शिवनन्दन रो पड़ा। उसके मुँहसे फिर शब्द न निकला। रघुनन्दनकी आँखोंमें भी आँसू उमड़ आये। उसने उसे उठाकर अपने गलेसे लगा लिया।

परन्तु कमलेश्वर बड़ा क्रुद्ध हो उठा। उसने बिगड़कर कहा,—"फिर तुमने अदालतमें क्यों कहा था?"

शिवनन्दन रोता हुआ ही बोला,—"उस समय माथेपर बड़े आदमीपनका भूत सवार था—अब वह उतर गया। वहाँ गवाही और प्रमाणोंद्वारा न्याय होता है। परन्तु पञ्च परमेश्वर हैं, यहाँ मुखसे झूठ निकल नहीं सकता। यहाँ ईश्वरी न्याय होता है।"

सब सन्न रह गये। कमलेश्वरने कहा,—"फिर मेरे रुपयों-का क्या होगा ?"

शिवनन्दनने कहा,—"यद्यपि मुझे मालूम नहीं था, कि मैं तुम्हारा कर्जदार हूं, यद्यपि तुमने पहले कभी मुझे यह नहीं कहा, कि तुम्हारे साथ सैर सपाटे, घूमने, फिरनेमें जो रुपये खर्च होते हैं, वे मेरे नाम डाले जाते हैं, तथापि मैं स्वीकार करता हूं, कि ये रुपये मैं जिस प्रकारसे होगा, तुम्हें दूंगा। मैंने तुम्हें मित्र कहा है, यद्यपि मेरे हाथकी कोई लिखा-पढ़ी नहीं है तथापि वे रुपये, जितना तुम कहोगे, तुम्हें चुकाऊंगा; परन्तु इसके लिये मुझे कृपाकर कुछ समय देना होगा। मैं अपने पापोंका पहले प्रायश्चित्त करूंगा—इसके बाद तुम्हारा पावना चुका दूंगा।"

तुरन्त ही रघुनन्दन बोल उठा,—"शिवनन्दन मेरा सहोदर है। यद्यपि उन रुपयोंकी मुझे कुछ भी खबर नहीं है, तथापि मैं अपनेको देनदार समझता हूं और अब मैं वह रुपया चुकाऊंगा। आज शिवनन्दन यदि घरमें रहता तो क्या मैं देनदार न होता ?"

शिवनन्दनने एक बार कृतज्ञ दृष्टिसे रघुनन्दनकी ओर देखा। उसने कुछ कहना चाहा; परन्तु उसके मुंहसे कोई बात न निकली।

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

कर्त्तव्य-पथपर ।

कमलेश्वरका लेन-देनका झमेला निपटे कई दिवस हो चुके हैं। शिवनन्दनकी प्रकृतिमें बहुत कुछ परिवर्त्तन आ गया है। रघुनन्दनके व्यवहार और चरित्र-बलने उसे अपने वशमें कर लिया है। वह अपना नया मकान छोड़कर अब रघुनन्दनके साथ ही रहने लगा है। यद्यपि वह इस समय कोई काम नहीं करता है तथापि इतने ही दिनोंमें उसमें कुछ ऐसा परिवर्त्तन आ गया है कि वह रघुनन्दनका परम आज्ञाकारी बन गया है। परन्तु वह दिन रात चिन्तित रहता है। सदा उसका चेहरा कुम्हलाया रहता है, जगदम्बाके सामने तो वह जाता ही नहीं है। यदि जगदम्बा जबर्दस्ती उससे बोलनेकी चेष्टा करती है तो वह दुःखित चित्तसे वहाँसे हट जाता है। प्रियम्बदा बाई इन दोनों भाइयोंको एकत्र देखकर अपने भ्राताकी बीमारीका समाचार सुन, नैहर चली गई हैं। रघुनन्दन अब वकालत नहीं पढ़ना चाहता, किसी नौकरीकी खोजमें है।

कुछ दिनोंतक उस गृहस्थीकी यही अवस्था रही। इसके बाद एकाएक शिवनन्दन एक दिन फिर लापता हो गया। बहुत कुछ पता लगाया गया ; परन्तु कुछ पता न लगा। इसके तीसरे ही दिवस रघुनन्दनके पास एक पत्र आया। पत्रमें लिखा था :—

पूज्यपाद भाई साहब !

"मैं बड़ा लज्जित हूँ, आपके साथ मैंने जैसा व्यवहार किया था, जगदम्बाके हृदयमें जिस तरह कष्ट पहुंचाया था और समाजके आगे जैसा आपलोगोंको नीचा देखना पड़ा था, उसका मैं कुछ प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। जबतक मैं इसका प्रायश्चित्त न कर लूँगा, तबतक आप लोगोंको अपना यह कलङ्कित मुख न दिखाऊँगा।

एक बात और भी है, यद्यपि यह बात आजतक न खुली है, तथापि मैं आपलोगोंको सावधान कर देता हूँ। कमलेश्वरसे सावधान रहना आवश्यक है। जगदम्बापर उसकी कुदृष्टि है। उसीकी बातोंमें आकर ही मैंने विधवा-विवाहके प्रचारका भार लिया था। वल्लभदास और उसका मत एक है। वे दोनों ही इस बातपर तुले हुए हैं। मैंने भी चेष्टा करनेका वचन दिया था; परन्तु जगदम्बा परम साध्वी सती है। उसके सन्मुख ऐसा प्रस्ताव करनेका भी मुझे साहस न होता था। मैंने कमलेश्वरसे अन्तमें स्पष्ट कह दिया था, कि यह कार्य होना असम्भव है। उसी दिवससे वह मुझपर खड्गहस्त हो गया; परन्तु मैं उसे अपना मित्र कह चुका हूँ। उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया चाहता। जगदम्बाका सती-तेज ही उसे अकर्त्तव्य-पथसे विमुख करेगा।

परन्तु इधर कुछ दिवसोंसे मेरी ऐसी धारणा हो गई है, कि जगदम्बाके पति जीवित हैं। ऐसी धारणा क्यों हुई,—सो मैं इस समय नहीं लिख सकता। परन्तु मेरी आत्मा कहती है, कि वे

अवश्य जीवित हैं। किसी कुचक्रमें पड़कर वे असहनीय कष्ट भोग रहे हैं। अतः मैं उनका पता लगानेके लिये ही घरसे निकला हूं, यदि यह कार्य हुआ, यदि किसी तरह उनका पता लगाकर उन्हें जीवित लौटा सका तो समझूंगा, कि मेरे पापका कुछ प्रायश्चित हुआ।

आशा है, इसके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे। और किसी प्रकारको चिन्ता न करेंगे।

आपका दासानुदास—

शिवनन्दन।

पत्र पढ़कर रघुनन्दन सन्न हो गया। जगदम्बाके सम्बन्धका कोई भी समाचार उसे मालूम न था। वह मन ही मन सोचने लगा—यह कैसा काण्ड है। आजतक लीलावती अथवा जगदम्बा किसीने भी इसका जिक्र क्यों न किया। अतः वह घोर चिन्तामें जा पड़ा।

अवसर पाकर उसने लीलावतीसे इस सम्बन्धमें पूछा। अब लीलावती छिपा न सकी। उसने जो कुल समाचार सुने थे, सच्चे सच्चे कह दिये। सुनकर रघुनन्दनको बुरा लगा। परन्तु बड़ी शान्तिसे उसने कहा,—"यदि स्त्री अपने पातिव्रतपर दृढ़ है, तो कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। परमात्माकी इच्छा है, वही होगा।"

इतना कहकर रघुनन्दन चिन्तित चित्तसे अपने कामसे चला गया। अभी तीसरा पहर बीत चुका था। लीलावती और

जगदम्बा बठी हुई, कमलेश्वरके विषयमें ही वार्त्तालाप कर रही थीं, कि इसी समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो कोई स्त्री द्वारपर बैठी हुई गा रही है। उसकी मनोहर कण्ठ-ध्वनि सुनकर मोहिनी ने पुकारकर कहा,—"मोहिनी! देख तो सही कौन गा रहा है?"

मोहिनी भी उसका स्वर सुन चुकी थी। जबसे रघुनन्दन आया था, तबसे वह कुछ शान्त हो गई थी। लीलावतीकी आज्ञा पाकर उसने बाहर जाकर देखा तो एक नवयौवना सुन्दरी योगिनी हाथमें एक तारा लिये गा रही है। उस योगिनीका रूप लावण्य देखकर मोहिनी कुछ देरतक टकटकी बाँधकर उसकी ओर देखती रही। योगिनी अपनी धुनमें मस्त होकर इस समय गा रही थी। मोहिनीको देखकर वह चौंक पड़ी।

मोहनीने पूछा,—"तुम कौन हो?"

योगिनीने अपना गाना बन्दकर कहा,—"मैं एक भिखमङ्गिन हूँ। मेरा परिचय ही क्या?"

मोहिनीने फिर पूछा,—"इस युवावस्थामें तुमने यह वेष क्यों धारण किया?"

योगिनी बोली,—"सो तुम्हें क्या बताऊँ? भगवानकी इच्छा।"

मोहिनी लौट पड़ी। उसने भीतर जाकर सब समाचार लीलावतीसे कहे। लीलावतीने कहा,—"उसे भीतर बुलाओ।"

मोहिनी उसे भीतर बुला लाई। लीलावती स्वयं भी सुन्दरी थी; परन्तु ऐसा सुन्दर रूप उसने पहले कभी न देखा था।

योगिनीने भी एक दृष्टिमें उन दोनोंको देखकर कहा,—"ईश्वर तुम लोगोंका कल्याण करे, कुछ भिक्षा दो।"

इतना कहकर उस योगिनीने एक गाना छेड़ दिया। उसके मधुर कण्ठसे निकली हुई वीणा विनिन्दित मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। जैसा ही रूप वैसा ही गाना। तीनों कुछ देरतक निस्तब्ध होकर उसका गाना सुनती रहीं। योगिनी एक गाना गाकर चुप हो गई। बोली,—"कुछ भिक्षा दो।"

जगदम्बा उठकर कुछ अन्न लाने चली गई। अवसर देख योगिनीने पूछा,—"ये विधवा हैं क्या?"

लीलावती बोली,—"हाँ।"

योगिनीने कहा,—"हा! वैधव्य भी बड़ा दुःख है। इतना कहते कहते उसकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़े।

लीलावती समझ गई, कि वैधव्य दुःखके कारण ही इसने यह वेष धारण किया है। बोली,—"ईश्वर न करे, किसीको यह दुःख भोगना पड़े।"

योगिनीने एक ठण्डी साँस लेकर कहा,—"भगवानकी इच्छा! अच्छा, यह किसका मकान है? तुम दोनों बड़ी सज्जन हो। किसी भिख-मङ्गिनके साथ ऐसा व्यवहार कोई नहीं करता। सब दुरदुरा देते हैं।"

लीलावतीने कहा,—"नहीं, ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

इसी समय मोहिनीने कहा,—"यह मकान रघुनन्दन बाबूका है।

जगदम्बाने उसको झोलीमें चावल देते हुए कहा,—"तुम्हारा गाना बड़ा मधुर है। एक भजन और भी गावो।"

योगिनो फिर गाने बैठ गई। उसको दृष्टि लीलावती पर ही गड़ी हुई थी, गाना गाकर वह चुप हो गई। लीलावतीकी ओर देखकर बोली,—"तुम ही इस घरकी मालकिन हो?"

लीलावतीने कोई उत्तर न दिया। मोहिनी बोली,—"हाँ ये ही हैं।"

जगदम्बाने कहा,—"फिर किसी दिन आना।"

योगिनी अच्छा कहकर उस दिवस चली गई। इसके बाद वह नित्य प्रति आने लगी। धीरे धीरे लीलावती तथा जगदम्बा से उसका सौहार्द्र बहुत कुछ बढ़ गया। बिचारी शिवनन्दनकी स्त्री इन झमेलोंमें बिलकुल ही बोलती न थी। उसके स्वभावमें न जाने कितना बड़ा अन्तर आ गया था। न जाने वह अपनेको कितनी बड़ी अपराधिनी समझती थी। जगदम्बा तथा लीलावती उसको बहुत कुछ समझाकर भी सान्त्वना न दे सकती थीं।

एक दिवस तीसरे पहर रघुनन्दन किसी कामसे गया हुआ था, कि इसी समय योगिनी वहाँ आ पहुँची। योगिनीको जगदम्बाने बड़ी खातिरसे अपने पास बैठाया। इसके बाद दोनोंमें कितनी ही तरहकी बातें होने लगीं। जगदम्बा तो विधवा थी ही। योगिनीने भी अपनेको बाल विधवा तथा अनाथिनी कहकर अपनी दुःख कथा सुनाई। अतः इन दोनोंका हृदय मिल जाना कोई आश्चर्य्यकी बात न थी, परन्तु योगिनीकी विशेष दृष्टि लीला-

वती पर थी। वह उससे ही विशेष बातें करती थी। लीलावती मनही मन कहती,—"यदि मेरी बातोंसे किसीके हृदयमें सान्त्वना पहुँचे तो कहनेमें क्या हर्ज है ?"

एक दिन इसी तरह लीलावती बैठी हुई थी, कि इसी समय योगिनी आ पहुंची। आज लीलावती अकेली ही बैठी थी।

योगिनी उसके पास जाकर बैठ गई और लीलावतीसे बातें करने लगी।

लीलावती बोली,—"अच्छा, क्या तुम्हारे घरमें और कोई भी नहीं है, जो तुमने इसी अवस्थामें यह वैराग्य धारण किया है ?"

योगिनी बोली,—"पुरुष जाति बड़ी स्वार्थपर होती है। उनकी स्वार्थ-परताका ही यह फल भोग रही हूँ।"

लीलावती बोली,—"सो क्या ?"

योगिनीने कहा,—"अब तुमसे क्या कहूं, कहते लज्जा होती है। मैं बाल-विधवा हूँ। पाप-वश मेरी माताने मेरा दूसरा विवाह कर दिया! उस समय मैं कलकत्तेमें ही थी। जिस मकानमें मैं रहती थी, उसी मकानमें दो नवयुवक आकर रहे। शायद वे पटनेके ही रहनेवाले थे, या उन्होंने झूठ ही कह दिया हो। उनमें एकका नाम रघुनन्दन था। रघुनन्दनने कईबार मुझसे अनुचित प्रस्ताव किया। परन्तु न जाने किस पापके फलसे तो मेरा दूसरा विवाह हुआ। बहन! क्या अब और भी पाप पङ्कमें लिप्त होती ? मैंने उनका तिरस्कार कर दिया। परन्तु उन्होंने क्रूरतावश ऐसी चालें चलनी आरम्भ कीं, कि मेरे पतिको

सन्देह हो गया। उन्होंने कुछ विचार तो किया ही नहीं, मुझे घरसे निकाल दिया। तबसे इसी तरह भिक्षा माँगकर पेट भरती और देशाटन करती हूँ।"

लीलावती बड़े ध्यानसे उसकी बातें सुन रही थी। जब वह चुप रह गई, तब बोली,—"अच्छा, उनका रूप रँग कैसा था?"

योगिनीने ठीक रघुनन्दनका सब रूप रँग बता दिया। सुनकर लीलावती बोली,—"यदि उन्होंने ऐसा किया है, तो बड़ा अन्याय किया है। उन्हें सच्ची सच्ची बातें तुम्हारे पतिसे कह देनी चाहियें।"

योगिनी बोली,—"पुरुष जाति तो बड़ी स्वार्थिन होती है। यदि मैं रघुनन्दन बाबूके प्रस्तावमें सहमत हो जाती तो आज यह दुर्दशा न होती; परन्तु स्त्री जातिके लिये सतीत्वसे बढ़कर तो दूसरा रत्न नहीं है, क्या करूँ।"

लीलावती सुनकर क्षण भर चुप हो रही। इसके बाद बोली,—"अच्छा बहन! तुम्हारा नाम क्या है?"

योगिनी बोली,—"नाम सुनकर क्या करोगी। अब यह अभागिनी अपना नाम किसीको बताया नहीं चाहती।"

लीलावतीने कोई आग्रह न किया। बोली,—"तुम्हारी इच्छा, तुमने जिस मनुष्यका नाम बताया है, उसी नामके एक मनुष्यको मैं जानती हूं। यदि सम्भव होगा तो तुम्हारा उपकार करनेकी चेष्टा करूँगी।"

योगिनी बोली,—"अच्छी बात है, मैं बड़ी कृतज्ञ होऊँगी।"

इतना कहकर योगिनी ध्यानसे लीलावतीका चेहरा देखने लगी; परन्तु उसके चेहरेपर चिन्ता या प्रतिहिंसाका कोई भी चिन्ह न दिखाई दिया। न किसी प्रकारके क्रोधकी ही झलक दिखाई दी। लीलावती बड़े शान्त भावसे बोली,—"तुमारे पतिने बिना सोचे समझे तुम्हें घरसे निकाल दिया, यह तो एक असम्भवसी बात दिखाई देती है, कि उन्होंने कुछ विचार भी न किया।"

योगिनी बोली,—"पुरुषोंका विश्वास नहीं। वे भी वैसे ही दुश्चरित्र हैं। अब किसी दूसरीको अर्द्धाङ्गिनी बनाकर आनन्द करते होंगे ?"

अभी लीलावती तथा योगिनीमें इसी ढङ्गकी बातें हो ही रही थीं कि एकाएक रघुनन्दन वहाँ आ पहुँचा।

रघुनन्दनको देखकर प्रत्युत्पन्नमति योगिनी "यही है, यही है" कहकर झिझक कर उठ खड़ी हुई और बिजलीके समान तेज़ीसे वहाँसे चली गई। रघुनन्दनने इतना ही देखा, कि एक नवयौवना योगिनी उसे देखते ही झिझक कर वहाँसे भाग गई है।

इधर रघुनन्दनको देखते ही लीलावती उठ खड़ी हुई। रघुनन्दनने उसको इस तरह एकाएक भाग जाते देखकर कहा,—"यह कौन स्त्री थी, इस तरह भाग क्यों गई ?"

लीलावती हँसकर बोली,—"पहचाना नहीं ? कलकत्तेमें किससे प्रेम करना चाहते थे ?"

रघुनन्दनने चकित होकर कहा,—"कैसी स्त्री और कैसा प्रेम ?"

लीलावती ठठाकर हँस पड़ी। बोली,—"कलकत्तेमें किसी स्त्रीसे प्रेम-भिक्षा न माँगी थी ?"

रघुनन्दनने कहा,—"कदापि नहीं।"

लीलावतीने आश्चर्यसे कहा,—"यह क्या, तब क्या वह झूठ ही कहती थी ?"

अबतक रघुनन्दनने समझा था, कि लीलावती उपहास कर रही है ; परन्तु जब लीलावतीने कहा, कि तब क्या वह झूठ कह रही थी, तब तो रघुनन्दन चौंक पड़ा। उसने आश्चर्यसे उसकी ओर देखकर कहा,—क्या बात है, साफ साफ बताओ।"

लीलावतीको फिर हँसी आ गई। बोली—"आप इतने संकुचित क्यों हो रहे हैं ? वह कहती तो यही थी, कि आपने उससे प्रेम-भिक्षा माँगी थीं। यह बात फूट गई और उसके पतिने उसे निकाल बाहर किया।"

इस बार रघुनन्दनका ध्यान एकाएक किशोरीकी ओर पलट पड़ा। वह कुछ सोचमें पड़ गया और चिन्ताका रेखा उसके चेहरेपर दिखाई देने लगी। उसने लीलावतीसे पूछा,—"तुम उसकी बातपर विश्वास करती हो ?"

लीलावती उसी तरह हँसती हुई बोली,—"क्यों न करूँगी ? पुरुषोंका कौन ठिकाना ? वह कहती थी, कि उसका पति भी दुश्चरित्र है।"

अब रघुनन्दनको इसमें कोई भी सन्देह न रह गया, कि वह किशोरी ही है ; परन्तु वह समझ नहीं सकता था, कि किशोरी

यहाँ कैसे आ पहुँची। अतः उसने गम्भीर होकर कहा, "अभी मैं कुछ नहीं बता सकता। मैं एक बार उस स्त्रीको देखना चाहता हूँ।"

लीलावती बोली,—"मैं तो आपसे कुछ पूछती नहीं हूँ और न कुछ सुनना ही चाहती।"

रघुनन्दन बोला,—"मेरी इतनी कलङ्क-कथा सुनकर भी कुछ पूछना नहीं चाहतीं?"

लीलावती बोली,—"मेरा अधिकार तो केवल आपकी सेवा करनेका है। यदि आप उसे बुलाकर यहाँ रखना चाहें, तब भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

रघुनन्दनने आश्चर्य्यसे उसके चेहरेकी ओर देखा। इसके बाद बोला,—"अच्छा, ये बातें पीछे होंगी। एक बार जिसने मुझे कलङ्कित और अपमानित करना चाहा है, उसको देखना आवश्यक है?"



पच्चीसवाँ परिच्छेद।

प्रतिहिंसा।

कमलेश्वरकी इच्छा पूर्ण न हुई। उसने शिवनन्दन और रघुनन्दनको दबाकर अपना काम निकालना चाहा था। पहले उसने शिवनन्दनको प्रलोभनमें डाला, फिर उसका अपमान किया; मोहनीद्वारा जगदम्बाको सन्देसा कहलाया, अपने सौन्दर्यपर उसे मुग्ध करनेकी चेष्टा की; परन्तु जब किसी तरह भी उसका स्वार्थ सिद्ध न हुआ, तब उसकी प्रतिहिंसा वृत्ति जाग उठी। उसने मन ही मन कहा,—"जिस तरह बन पड़ेगा, छल-बल कौशलसे जगदम्बाको हस्तगत करना ही होगा। धन-बलके सम्मुख सब बलोंको हार खानी पड़ेगी।"

उसी दिवससे कमलेश्वरने और भी दृढ़तासे कार्य करना आरम्भ किया।

एक दिन दोपहरका समय था, कमलेश्वर अपने बागके एकान्त कमरेमें बैठा हुआ, मन ही मन कुछ सोच रहा था। उसके सम्मुख ही कुछ दूर हटकर मोहनी बैठी हुई थी। कमलेश्वर घोर चिन्तामें निमग्न बैठा हुआ था। कुछ क्षण इसी तरह सन्नाटा रहने बाद मोहनी बोली,—"देखिये, इसमें मेरा क्या दोष है? मैंने हर तरहसे आपकी आज्ञा पालन की; परन्तु वहाँ तो जो रंग चढ़ा है, वह बहुत गहरा है, किसी तरहसे उतरता ही नहीं। तिसपर आज वह भागलपुर जा रही है।"

कमलेश्वरने कहा,—"परन्तु मैं भी बिना उतारे न छोड़ूँगा।"

मोहनी बोली,—"अब इस झमेलेमें न पड़िये। इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

कमलेश्वरने कोई उत्तर न दिया। कुछ देर बाद बोला,—"अच्छा, तुम जाओ, मैं इसका प्रबन्ध आप ही कर लूँगा।"

मोहनी उठ कर चली गई।

असल बात यह थी, कि जगदम्बा अपने पिताकी बीमारीके समय जो अपनी ससुरालसे लौट आई, सो फिर वहाँ न गई थी। इस समय उसकी सासने उसे बुलानेके लिये अपना मनुष्य भेजा और लाचार जगदम्बा भी उसके साथ ही चली गई।

जगदम्बाके चले जानेका समाचार सुनते ही कमलेश्वर घबड़ा उठा। वह उसी समय भागलपुर जानेके लिये तय्यार हो गया और जगदम्बाके भागलपुर पहुँचनेके दूसरे ही दिवस वहाँ आ पहुंचा।

भागलपुरमें जगदम्बाके मकानसे सटा हुआ ही कमलेश्वरके एक परिचित मनुष्यका मकान था। उसी मकानमें कमलेश्वर उतरा और अपना जाल फैलानेकी चेष्टा करने लगा।

पहले ही कह चुके हैं, कि जगदम्बाके धनपर कितने ही मनुष्योंकी दृष्टि थी और इसी लिये आपसमें ही बड़े ज़ोरोंमें मुकद्दमा चल रहा था। अतः जगदम्बाके शत्रुओंकी वहाँ कमी न थी।

कमलेश्वरने वहाँ जाते ही चारों ओर अपना जाल फैलाना

आरम्भ किया। धन-बलसे उसने उस घरके कितने ही दास दासियोंको अपने वशमें कर लिया।

एक दिन अमावस्याकी घोर अन्धकारमयी रजनी थी। आज बादल भी खूब घिरे हुए थे। कमलेश्वर घोर चिन्तामें निमग्न होकर अपने कमरेमें टहल रहा था इसी समय उसके पास एक स्त्री आकर बोली,—"सब ठीक है, चलिये।"

आज कमलेश्वरने स्थिर कर लिया था, कि इस तरह काम न चलेगा। इसलिये एकबार वह स्वयं उससे मिलना चाहता था। उसे विश्वास था, कि यह उसके रूपपर मुग्ध हो जायगी।

उस स्त्रीके साथ कमलेश्वर चोर पदसे अपनेको बचाता हुआ, जगदम्बाके मकानमें गया। इस समय जगदम्बा दुतल्लेके एक कमरेमें सो रही थी। कमलेश्वरने दबे पाँव उसी कमरेमें प्रवेश किया। एकाएक किसीके पैरकी आहट पाकर जगदम्बाकी निद्रा खुल गई और तुरन्त ही उसे अपने कमरेमें कोई मनुष्य दिखाई दिया।

जगदम्बा चौंक उठी। वह चिल्लाया ही चाहती थी, कि इसी समय कमलेश्वरने कहा,—"चिल्लाना मत। नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश होगा!"

जगदम्बा कमलेश्वरको पहचान गई। उसने पटनेमें ही उसे देखा था। बोली,—"कमलेश्वर बाबू! आप यहाँ कैसे?"

कमलेश्वरने कहा,—"अब सहन नहीं होता, मेरी प्रार्थना है, कि तुम मुझसे विवाह करना स्वीकार करो।"

जगदम्बा बोली,—"आप भले घरके लड़के हैं, आपका यह कैसा कर्म्म है, कि मेरे शयन-गृहमें चोरोंकी भाँति घुस आये ?"

कमलेश्वर बोला,—"मैं अवश्य अपराधी हूँ ; परन्तु क्या करूँ ? तुम्हारे इस सौन्दर्यने मुझे पागल बना रखा है, मेरी सुधि-बुधि खो गई है। अब सहन नहीं कर सकता, इसी कारणसे अब पाप-पुण्यका विचार भी नहीं रह गया है। मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हें राज-रानी बनाऊँगा, तुम्हारे लिये मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँगा।"

जगदम्बा बोली,—"परन्तु कमलेश्वर बाबू ! जिस रूपपर आप इतने मुग्ध हो रहे हैं, वह क्या है ? वह तो क्षण स्थायी है, वह तो सदा न रहेगा, फिर तो मैं आपके किसी कामकी न रहूँगी ? ऐसी अवस्थामें मैं आपका प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर लूँ।"

कमलेश्वरको अभीष्ट सिद्धिका लक्षण दिखाई दिया। वह बोला,—"नहीं नहीं, मैं आजन्म तुम्हारा क्रीतदास बना रहूँगा।"

जगदम्बा बोली,—"आप मेरे गुणोंपर मुग्ध होते तो मुझे पाप पथपर अग्रसर करनेकी चेष्टा नहीं करते। मोहित हैं, केवल क्षण स्थायी रूप पर। जाने दीजिये, इस विचारको। यह अच्छा नहीं। यह मुख, यह जिह्वा, यह नेत्र, यह शरीर, यह सभी तो मांसके पिण्ड हैं, समूचे शरीरमें तो मल भरा है, इसके लिये आप इतने क्यों लालायित हैं ? क्या आप मेरे नेत्रोंपर मोहित हैं, ये नेत्र तो काम पिपासा तृप्त करनेके लिये नहीं है, बल्कि ईश्वरकी सृष्टिका

सौन्दर्य्य निरख कर उसके प्रति श्रद्धा करनेके लिये है ? क्या आप मेरे मुख पर मोहित हैं यह मुख तो केवल अपने इष्टदेवका नाम स्मरण करनेके लिये हैं। यह सब जो कुछ आप देख रहे हैं, आज है, कल न रहेगा। आज आपकी मुझपर जैसी प्रवृत्ति है, कल उससे बढ़कर विरक्ति हो सकती है। इसलिये इन झमेलोंको छोड़िये। विधवायें त्यागका महत्व खूब जानती हैं। वे आत्मसंयम खूब समझती हैं। वे जानती हैं, कि हृदय दोको नहीं दिया जा सकता। एक हृदय सिंहासनका अधिकारी दो मनुष्य नहीं हो सकता। मैं जिसे अपने हृदय मन्दिरमें एकबार बैठा चुकी हूँ, उसको मूर्तिका पूजन आज भी करती हूँ, और आजीवन करती रहूंगी। उसमें आपके सभी प्रलोभन, आपका रूप, आपका धन-बल, आपका चातुर्य-बल कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। आपने अनधिकारपूर्वक मेरे गृहमें प्रवेश किया है, अभी आपको पकड़वा सकती हूँ, परन्तु नहीं, ईश्वरसे प्रार्थना है, कि वह आपको सच्चरित्र बनाये। यदि आप सच्चरित्र हो गये, तो अपने भ्राताके समान आपसे स्नेह करूँगी और आवश्यकता पड़नेपर आपकी सेवा करूँगी; क्योंकि आप मेरे सहोदर भाईके मित्र हैं।"

जगदम्बा हृदयके आवेगमें बहुतसी बातें कह गई। उसे स्मरण न रहा, कि इस समय वह कहाँ है और किससे तथा किस ढंगसे बातें कर रही है। कमलेश्वर तो जगदम्बाकी तीव्र प्रभा और उसकी बातें सुनकर किंकर्त्तव्य विमूढ़सा हो गया था। उसके मुँहसे बोली न निकलने लगी और वह चुपचाप

खड़ा होकर उसके चेहरेको ओर देखता हुआ, उसकी बातें सुनने लगा; परन्तु जगदम्बाकी आवाज बाहर कमरेमें जा पहुँची। उसकी सास बगलवाले कमरेमेंही सोती थीं। जगदम्बाकी आवाज़ उनके कानोंमें पड़ी। वह एकाएक अपने कमरेसे निकल आईं। बाहर निकलकर जब वह जगदम्बाके कमरेके सामने आईं तो उन्होंने देखा, कि जगदम्बा अपनी चौकी पर पैर लटकाये बैठी है और एक नवयुवक उससे थोड़ी दूरीपर खड़ा है। यह अवस्था देखकर उसकी सास आश्चर्य्यमें आकर बाहर ही ठिठक गई। परन्तु जगदम्बाका इन बातों पर ख़याल न था।

कमलेश्वरको कोई उत्तर देते न देखकर जगदम्बाने फिर कहा,—"बोलते क्यों नहीं, आप इस समय मेरे हाथोंमें हैं। मैं इच्छा करते ही आपको इस योग्य बना दे सकती हूँ, कि आप कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहें; परन्तु नहीं, मैं चाहती हूँ, कि आप प्रतिज्ञा करें, कि आजसे कभी किसी स्त्रीको कुपथगामिनी बनानेकी चेष्टा न करेंगे। ईश्वरने आपको अतुलनीय धन-राशि दी है, उसका सद्व्यवहार कीजिये। उसके द्वारा देश और समाजका उपकार कीजिये। लाखों विधवायें ऐसी दुर्दशाग्रस्त हैं, जिन्हें खानेको नहीं मिलता, जो उदर ज्वालासे तड़प रही हैं, उनकी रक्षाके लिये कुछ धन-व्यय कीजिये, आपका मंगल होगा। अच्छा, अब जाइये। ईश्वरने कुशल की जो आपको किसीने देखा नहीं। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करती हूँ, कि वह आपको सुराहपर लाये?"

कमलेश्वरसे कुछ उत्तर देते न बना। वह फिर भी चुप खड़ा रहा। जगदम्बाने उसको खड़ा देखकर फिर कहा,—"अब क्षणभर विलम्ब न कीजिये। चले जाइये।"

अब लाचार कमलेश्वर वहाँसे हटना ही चाहता था, कि एकाएक जगदम्बाकी सासने उस घरमें प्रवेश किया। उन्हें देखते ही कमलेश्वर भयसे काँपने लगा। जगदम्बा उठकर खड़ी हो गई।

जगदम्बाकी सासने कमरेमें घुसकर क्रोधभरे स्वरमें जगदम्बाकी ओर देखकर कहा, —"यह कौन है?"

जगदम्बाने हाथ जोड़कर कहा,—"अब इन्हें क्षमा कीजिये? ये अपनी ही जातिके एक धनी मनुष्यके पुत्र हैं।"

जगदम्बाकी सास क्रोधित स्वरमें बोलीं,—"फिर यह यहाँ क्यों आया?"

जगदम्बा क्या उत्तर दे? अपने रूपपर पर-पुरुषकी दृष्टि है, यह बताते उन्हें बड़ा संकोच हुआ। वह कुछ उत्तर न दे सकी। जगदम्बाकी सास बोली,—"मैं बहुत देरसे तुम दोनोंकी बातें सुन रही हूँ, और अच्छी तरह समझ गई हूँ, कि यह यहाँ क्यों आया था। तुमने इसे छोड़ दिया है; परन्तु मैं नहीं छोड़ सकती। मैं इसे अवश्य दण्ड दूँगी।"

धनी-घरकी मालकिन जगदम्बाकी सास इस समय मारे क्रोधके काँप रही थी। उन्होंने कहा, —"इसने मेरे कुलमें कलङ्क लगाना चाहा था; बड़े भाग्यसे तुम सरीखी बहू मुझे मिली है,

नहीं तो इस कलियुगमें अपने धर्मपर स्थिर रहना क्या सहज बात है, मैं इसको नहीं छोड़ सकती ।"

कमलेश्वरका समूचा शरीर इस समय भय-कम्पित हो रहा था। पापियोंकी ऐसी ही गति होती है। वह एक बार कातर दृष्टिसे जगदम्बाकी ओर देखता, एकबार उसकी सासकी ओर; परन्तु दोनोंकी ही दृष्टि उसे रोष-प्रज्वलित दिखाई देती थी।

अन्तमें जगदम्बाने बड़े साहससे कहा,—"यह पटनेके वीरेन्द्रनाथके पुत्र हैं। इनका बहुत तरहसे अपमान हो चुका है, और आज भी इनकी भर्त्सना अच्छी तरह हो चुकी है; अब आशा है, कि ये कुपथपर अग्रसर न होंगे।"

जगदम्बाकी सासने एकबार आश्चर्य्यसे कमलेश्वरकी ओर देखकर कहा,—"क्या तुम धर्मात्मा वीरेन्द्रनाथके पुत्र हो! नहीं, ऐसा तो नहीं मालूम होता। उनका पुत्र ऐसा दुरात्मा हो जाये, यह आश्चर्य्यकी बात है। अच्छा, तुम यहाँ किस तरह आये?"

पापियोंके हृदयमें साहस नहीं होता। इस बार कमलेश्वरने रोते रोते क्षमा माँगी और ठीक ठीक बता दिया, कि वह कैसे यहाँ आ पहुँचा था। वह मज़दूरिन भी बुलाई गई और उसने सब सच्ची सच्ची बातें कहकर क्षमा माँगी।

जगदम्बाकी सासने सब सुनकर कहा,—"अच्छा, इसबार तो मैं छोड़ देती हूँ; परन्तु यदि फिर सुना, कि बहूपर तुम्हारी कुदृष्टि है, तो पुरी तरहसे खबर लूंगी।"

इतना कहकर उन्होंने दासीकी ओर देखकर कहा,—"इसे जिस तरह ले आई थी, उसी तरह पहुँचा आ।"

दासी कमलेश्वरको साथ लेकर चली गई। जगदम्बाकी सासने दौड़कर उसे अपने गलेसे लगा लिया। जगदम्बाकी आँखोंसे दर दर अश्रुपात होने लगा, उधर वृद्धा सासकी आँखोंसे भी आँसुओंकी धारा वह चली। बहुत देरतक दोनों इसी तरह रोती रहीं। इसके बाद वृद्धाने कुछ शान्त होकर कहा,—"बेटी! तू मेरे घरकी लक्ष्मी है, मैं इतने दिनों तक तेरा महत्व नहीं समझी थी; परन्तु तू वास्तवमें देवी है।"

इतना कहकर वृद्धा जोर जोरसे रोने लगी। रोती रोती फिर बोली,—"बेटी! मेरा धन खो गया है, परन्तु तुझे देखकर मैं उस धनको भूल जाती हूँ। तुझे क्या आशीर्वाद दूँ। मुझे अभी भी आशा लग रही है, कि मेरा वह खोया हुआ धन कभी न कभी फिर लौट आयगा।"

इसी तरहकी बातोंमें सवेरा हो गया। दासी कमलेश्वरको पहुंचाने जो गई सो फिर लौटकर न आई।

———

छब्बीसवाँ परिच्छेद।

गंगा-तटपर।

रात्रिके लगभग आठ बजनेका समय है। आकाशमें चांदनी खिल रही है, चन्द्रदेवकी मनोहर किरणें वायुमें उठती हुई गङ्गाकी निर्मल तरङ्गोंपर अठखेलियाँ कर रही हैं। गङ्गातटके एक घाटपर एक सुन्दर नवयुवक बैठा हुआ है, उसके सामने ही एक नवीना योगिनी बैठी हुई है।

युवकका चेहरा मुरझाया हुआ है और वह योगिनी रह रहकर कुटिल दृष्टिसे उस युवककी ओर देखती और फिर कुछ सोचने लगती है। कुछ देरतक योंही चुप रहने बाद युवक बोला,—"तुम यहाँ क्यों आई हो?"

योगिनी बोली,—"आई हूँ तुम्हारे प्रेमकी परीक्षा लेने और अपने प्रेमकी परीक्षा देने।"

युवक बोला,—"परन्तु यह प्रेमकी परीक्षा तो नहीं बल्कि भीषण प्रतिहिंसा है?"

योगिनी बोली,—"मनुष्यके हृदयकी परीक्षा इसी भाँति होती है, यदि मैं तुम्हारी निन्दा न करती तो कैसे मालूम होता, कि जिसे तुम इतनी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हो, उसका हृदय किसी दूसरे ही स्थानपर रम रहा है?"

युवक चौंक उठा,—"बोला, इसका क्या मतलब ? यह कैसी बात है ?"

योगिनीने निशाना लगता देखकर तीव्र दृष्टिसे उस युवककी ओर देखकर कहा,—"हाँ हाँ, रघुनन्दन बाबू ! आप अभी बड़े भोले भाले हैं, आप इन बातोंको अभी क्या जानें। ऐसा ही होता है ?"

रघुन्दनने कुछ आग्रहसे कहा,—"तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आती, तुम साफ़ साफ़ बताओ।"

योगिनीने कहा,—"मुझे बताना कुछ भी नहीं है, मेरे घरमें तो आग लग ही गई, अब मैं तो इसी वेशमें अपना जीवन व्यतीत करूँगी ; फिर वृथा ही आपके घरमें भी आग क्यों लगाऊँ ? आपके मुंहसे आपकी स्त्रीकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी, इसीलिये एकबार देखने आयी थी, परन्तु यहाँ आकर समझ गई, कि संसार छलसे भरा है। सच्चा प्रेम इसमें नहीं है।"

रघुनन्दनका मस्तिष्क बिगड़ चला। बोला,—"तुम क्या कहती हो ? तुम क्या समझती हो, कि लीला पापिनी है ?"

योगिनीने कहा,—मैं अपने मुंहसे यह बात क्यों कहूँ।"

रघुनन्दनके हृदयमें मानो सहस्रों बिच्छु डंक मारने लगे। वह कुछ क्षणतक गम्भीर चिन्तामें निमग्न रहा। इसके बाद बोला,—"मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी है, तुम्हारी पाप-वासना पूर्ण नहीं की है, इसीलिये मेरे घरमें अब तुम विद्वेष फैलाने आयी हो। मैं तुम्हारी बातोंपर विश्वास नहीं करता। मैं तो तुमसे मिलता भी

नहीं, परन्तु तुमने अपना कलङ्क छिपाकर मुझे झूठ ही कलङ्कित किया था और मेरी स्त्रीके हृदयमें भी मेरी ओरसे विराग उत्पन्न कर देनेकी चेष्टा की थी। इसी लिये मैं केवल यह जाँचनेके लिये कि यह स्त्री कौन है, दो दिनोंसे तुमसे मिलनेकी चेष्टा कर रहा था और आज संयोगवश तुमसे भेंट हो गई, परन्तु यह स्मरण रखना, कि तुम्हारी बातोंका प्रभाव लीलापर कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि वह तो तुम्हें अपने घरमें रखनेके लिये ही तय्यार है।"

इतना कहकर वह ध्यानसे उसके चेहरेकी ओर देखने लगा। परन्तु किशोरीके चेहरेमें ज़रा भी अन्तर न पड़ा। उसने छूटते ही कहा, —"हाँ हाँ, यदि इतनी मौखिक भक्ति न दिखाई जाये, तो परम पतिव्रता और सती हो कैसे समझी जाये। परन्तु मैं तो आपसे आग्रह नहीं करती कि आप उसे दुश्चरित्रा समझें और न मैं ही यह बात कहती हूँ।"

इतना कहकर किशोरी उठ खड़ी हुई। रघुनन्दनके मस्तिष्कमें किसीने मानो जोरसे पदाघात किया। उसनें कहा"—जाती कहाँ हो, किसी स्त्रीपर इस तरह कलङ्क लगा और मेरे हृदयमें सन्देहाग्नि जलाकर तुम जा न सकोगी। तुम्हें इसका प्रमाण देना होगा ?"

किशोरीने कहा,—"परन्तु यदि मैं प्रमाण दे दूँ, तो फिर आप क्या करेंगे ?"

रघुनन्दन,—"उसी क्षण उसे त्याग दूँगा।"

किशोरी,—"परन्तु इससे मेरा क्या लाभ ? मैं क्यों किसी

अबलाको कष्ट पहुँचाऊँ? उसने तो मुझे कोई हानि नहीं पहुँचाई है।"

इतना कहकर योगिनी वेशधारिणी किशोरी तेजीसे एक ओर-को अग्रसर हो चली।

रघुनन्दन जितना ही शान्त प्रकृतिका मनुष्य था, किशोरीके मुँहसे यह कलङ्क कथा सुनकर वह उतना ही क्रोधित हो उठा। उसने झपटकर किशोरीका हाथ पकड़ लिया। बोला,—"तुम यों जा नहीं सकतीं, पहले तुमको लीलाके दुराचारिणी होनेका प्रमाण देना होगा।"

रघुनन्दनने इस समय इस जोरसे किशोरीका हाथ पकड़ा था, कि वह तिलमिला उठी। बोली,—"ओह! हाथ छोड़ो। यह क्या, आज तुमने पर-स्त्रीका हाथ पकड़ लिया।"

रघुनन्दनने चौंककर उसका हाथ छोड़ दिया। बोला,—"हाँ, उत्तेजनामें भूल हो गई; परन्तु मैं तुम्हें जाने न दूँगा। तुमको इसका प्रमाण देना ही होगा।"

किशोरी घूमकर खड़ी हो गई। बोली,—"प्रमाण चाहते हैं? अच्छा, प्रमाण दूँगी; परन्तु सावधान अभी यह बात प्रकाशित न हो। कल संध्याके समय इसी स्थानपर मुझसे मिलना।"

रघुनन्दन बोला,—"ठीक है, कल रात्रिके आठ बजे मैं यहीं तुम्हारे लिये अपेक्षा करूँगी।"

इतना कहकर किशोरी चली गई। रघुनन्दन उसी घाटपर

बहुत देरतक घोर चिन्तामें निमग्न बैठा रहा। इसके बाद बहुत रात गये, वह घर लौटा।

अबतक लीलावती बैठी उसकी राह देख रही थी। उसने भी भोजन न किया था। रघुनन्दन जिस समय मकानपर पहुँचा, उस समय रातके ग्यारह बज चुके थे। रघुनन्दनका चेहरा खिन्न हो रहा था, वह सीधा ऊपर अपने कमरेमें चला गया।

लीलावतीको सन्देह हुआ, कि आज रघुनन्दनकी तबीयत कुछ खराब है। अतः वह भी उसके पीछे पीछे ही दौड़ती हुई ऊपर जा पहुँची। ऊपर जाकर उसने देखा, कि रघुनन्दन पलङ्गपर लेटा हुआ है। उसका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया है और रह रह रहकर ठण्डी साँसें लेता है।

उसकी यह अवस्था देखकर लीलावतीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने जाकर उसके बदनपर हाथ रखा। रघुनन्दनने धीरेसे उसका हाथ हटा दिया। लीलावतीने बड़े ही नम्र स्वरमें पूछा,—"क्यों, आज कैसी तबीयत है?"

रघुनन्दनने कुछ कुण्ठित स्वरमें कहा,—"अच्छी है, कुछ विशेष खराब नहीं है।"

आजतक रघुनन्दनने लीलावतीको कभी इस रुखाईसे उत्तर न दिया था। न उसके साथ कभी उसने कोई रूखा व्यवहार ही किया था। आज एकाएक रघुनन्दनकी प्रकृतिमें यह अन्तर देखकर वह चौंक पड़ी। वह मनही मन सोचने लगी, कि क्या आज मुझसे कोई अपराध हो गया है, जिससे ये अप्रसन्न हो रहे

हैं। अतः उसने बड़े विनीत भावसे कहा,—"चलिये, भोजन कर लीजिये। रातके ग्यारह बजे, भूख लगी होगी।"

रघुनन्दनने मुँह फेरे फेरे ही कहा,—"नहीं, आज मैं भोजन न करूँगा।"

लीलावती,—क्यों ?

रघुनन्दन,—भोजनकी इच्छा नहीं है।

लीलावती,—नाथ! आज क्या आप मुझसे कुछ अप्रसन्न हो रहे हैं ?

रघुनन्दनने कोई उत्तर न दिया। लीलावती घोर चिन्तामें जा पड़ी। इतने समयके जीवनमें जो घटना आजतक कभी न घटी थी, वही आज घटी। वह सोचने लगी, कि क्या कारण है, जो आज ये ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। अतः इस समय उसने रघुनन्दनसे विशेष पूछना उचित न समझा। उसका नित्यका नियम था, कि वह रघुनन्दनके पैर दबाती और फिर सोती थी; परन्तु आज ज्योंही उसने रघुनन्दनके पैरमें हाथ लगाया; त्योंही उसने अपने पैर समेट लिये। लीलावती अब दुःखसे कातर हो रो पड़ी और रोती रोती ही उसी स्थानपर बिछी एक चटाईपर सो रही।

रघुनन्दनको भी निद्रा आ गयी। लगभग दो बजे रातके उसकी नींद खुली। उसने देखा, कि लीलावती नीचे ज़मीनपर पड़ी है।

वह कुछ देरतक उसकी यह अवस्था देखता रहा। इस समय

भी मानो उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, आँचल-का अग्रभाग तथा चटाईका वह अंश जिधर उसका मुंह था, भींगा हुआ था। यह अवस्था देखकर रघुनन्दन कुछ क्षणतक उसके चेहरेकी ओर विषाद भरी दृष्टिसे देखता रहा। इसके बाद उसने लीलावतीको उठाकर पलङ्गपर लेटा दिया। लीलावतीने एक बार आँखें खोलकर रघुनन्दनकी ओर देखा और फिर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। वह आँचलसे अपना मुंह ढँककर सो रही।

रात्रि बीत गयी, सवेरा हुआ। परन्तु न तो रघुनन्दनकी चिन्ता मिटी और न लीलावतीकी ही। आज रघुनन्दनसे भोजन भी भरपेट न हो सका। परन्तु रातमें इतना काण्ड हो जानेपर भी लीलावतीने अपना चेहरा सदाकी भाँति हँसमुख बना रखा। किसीको कानोकान खबर न हुई, कि कहाँ क्या हो गया है। तीसरे पहर अपने नियमानुसार योगिनी भी आई, उससे भी लीला-वती उसी तरह हँस हँसकर बातें करती रही, जिस तरह पहले। किशोरीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ, कि रघुनन्दनकी इतनी शिकायत करनेपर भी लीलावतीके चित्तमें ज़रा भी विक्षेप न पैदा हुआ।

किशोरी बहुत देरतक इस अवस्थापर विचार करती रही, ज्यों ज्यों वह विचारती गई, त्यों त्यों उसके हृदयमें एक अद्भुत विचार पैदा होता गया। वह मन ही मन कहती,—"यह कैसी स्त्री है। अपने पतिके दुराचारी होनेका समाचार सुनकर भी इसके हृदयमें

ज़रा भी कष्ट न हुआ ? बदला लेनेकी इच्छा न उत्पन्न हुई, और एक मैं हूँ, जिसने सुखके लोभमें दूसरा विवाह कर लिया और अब उसे त्यागकर तीसरेकी अङ्क-शायिनी बननेके लिये इतना उद्योग कर रही हूँ। यह विचार उसके मनमें उत्पन्न होनेके साथ ही रघुनन्दनका व्यवहार भी उसे स्मरण-पथपर आ खड़ा हुआ। रघुनन्दनका चरित्र बल, सज्जनता उसे अच्छी न लगती थी। इसी लिये रघुनन्दनका नाम स्मरण आते ही उसके शरीरमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाती थी।

कुछ देर बैठने बाद योगिनी उठकर चली गई।

ठीक नियत समयपर रघुनन्दन योगिनीसे जाकर मिला। उसी घाटपर एकान्त स्थानमें दोनों फिर एकत्रित हुए। रघुनन्दनने उसे देखते ही कहा,—"तुमने मेरे हृदयमें भयानक अग्नि उत्पन्न कर दी है, यह ज्वाला मुझसे सही नहीं जाती। अब बताओ, लीलावतीके दुराचारिणी होनेका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?"

योगिनी बोली,—"देखो, मैं फिर समझाती हूँ, कि इस झमेलेमें न पड़ो। वृथा अपने घरकी क्यों दुर्दशा करते हो ? अभी स्त्रियोंके चरित्रको समझनेकी तुममें शक्ति नहीं है।"

रघुनन्दन बोला,—"मैं खूब समझता हूँ। इतनी बातें समझानेकी तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है। बताओ, तुमने लीलावती-को दुराचारिणी किस तरह समझ लिया ?"

किशोरी बोली, —"अच्छा, गोविन्दनारायणको जानते हो ?"

रघुनन्दन,—"कौन गोविन्दनारायण ?"

किशोरी बोली,—"वही, जिसके भरोसे अपनी गृहस्थी छोड़ कर कलकत्ते गये थे, जिसे अपने घरमें अनवरत जाने आनेका अधिकार तुमने दे रखा है। जिसके सुपुर्द अपनी स्त्रीको रख कलकत्ते पढ़ने गये थे ?"

रघुनन्दन बोला,—"गोविन्दनारायण और विश्वासघाती! यह मैं कदापि विश्वास नहीं कर सकता।"

किशोरीने कहा,—"न करो तुम्हारी इच्छा, मैंने जो देखा है, जो सुना है, सो तुमसे कह दिया।"

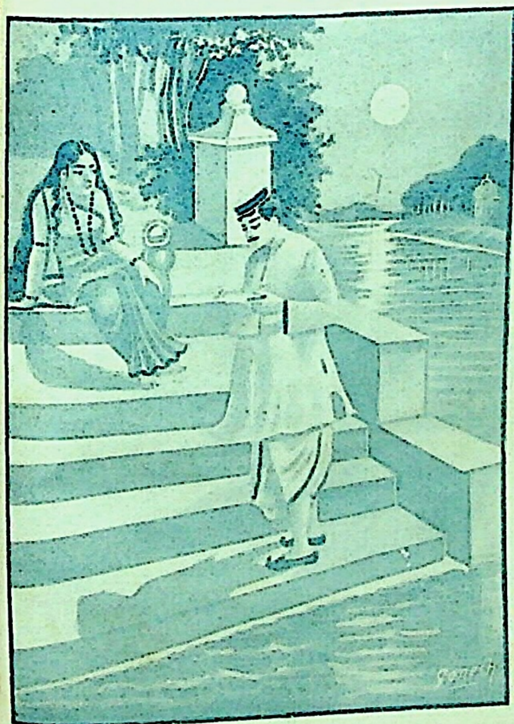
रघुनन्दन घोर-चिन्तामें जा पड़ा। कुछ देरतक सोचने बाद बोला,—"गोविन्दनारायण मेरा परम मित्र है, उसपर मैंने सब तरहसे विश्वास किया है, वह मेरी स्त्रीको भाभी कहता है और घरके मनुष्योंकी भाँति पिताके समयसे ही बराबर जाता आता रहता है ? उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसपर अविश्वास करनेके लिये तुम्हारे पास कोई प्रमाण भी है ?"

किशोरी बोली,—"तुम क्या मुझे झूठी समझते हो ? यह प्रमाण देखो।"

इतना कहकर, उसने एक पत्र निकालकर रघुनन्दनके हाथमें दे दिया। पास ही गलीमें लगी हुई, एक लालटेनकी रौशनीके सहारे वह पत्र पढ़कर रघुनन्दन काँप उठा। पत्रमें लिखा था,—

"प्रिय भाभी !

मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ; इससे तुम अपरिचित नहीं हो। बदलेमें तुमने भी उस प्रेमका वैसा ही प्रतिदान दिया है।



पास ही गलीमें लगी हुई, एक लालटेनकी रौशनीके सहारे वह पत्र पढ़कर रघुनन्दन कांप उठा।

(देखिये पृष्ठ—संख्या १९८)

Durga Press, Calcutta.

संयोगवश मैं कुछ कामसे यहाँ चला आया हूँ। परन्तु हृदय तुम्हारी ओर ही अटका है। ऐसा प्रेम आजतक मुझे कहीं भी प्राप्त न हुआ। तुम्हारी इस कृपाके लिये मैं सदैव तुमारा दासके समान रहूँगा। तुम यहाँ अकेली हो, अतः कष्ट तो अवश्य ही होता होगा; परन्तु क्या करूँ, लाचारीसे ही तुमसे अलग होना पड़ा है ? परन्तु तुमसे मिलनेके लिये हृदय सदा व्याकुल रहता है। ईश्वर तुम्हें कुशल पूर्वक रखे। मैं शीघ्र ही आऊँगा। परन्तु इतने दिनकी जुदाईमें ही मुझे भूल न जाना।"

तुम्हारा—"

गोविन्द।"

अभी रघुनन्दन पत्र समाप्त भी न कर पाया था, कि किशोरीने पूछा,—"क्या इससे भी अधिक प्रमाणकी आवश्यकता है ?"

रघुनन्दनने पत्र समाप्त कर कहा,—"मुझे तो इसमें कोई ऐसी बात नहीं मालूम होती, जिससे मुझे उसका कोई कु-अभिप्राय मालूम हो ?"

किशोरीने ठठाकर हँसते हुए कहा,—"निर्बोध पुरुष ! तब क्या स्पष्ट लिख देता, कि........"

बीचमें ही रघुनन्दनने आवेशसे कहा,—तुम्हारा यह प्रमाण पर्य्याप्त नहीं है ?"

किशोरी बोली,—"अच्छा तो और लो। इतना कहकर उसने एक दूसरा पत्र निकालकर रघुनन्दनके हाथमें दे दिया। रघुनन्दनने पत्र देखा, ठीक लीलावतीके अक्षर थे। उसे अक्षर पहचा-

नेमें जरा भी विलम्ब न हुआ। पत्र ठीक इस भावसे लिखा हुआ था, मानो कोई स्त्री अपने पति अथवा प्रेमाधारको लिख रही है। यह पत्र ठीक ऐसा मालूम होता था, मानो उसी पत्रके उत्तरमें लिखा गया है। इसबार वह पत्र देखकर रघुनन्दन काँप उठा। बोला,—"इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह पत्र तुम्हारी बातोंकी पुष्टि करता है।"

इतना कहकर रघुनन्दन वहाँसे तेज़ीसे अपने घरकी ओर लौटा। इस समय ऐसा मालूम होता था, मानो उसका समूचे शरीर उत्तप्त हो गया है। वह काँप रहा था। उसकी यह अवस्था देखकर किशोरीने कहा,—"तुम्हारी यह कैसी अवस्था हो रही है?"

रघुनन्दनने कोई उत्तर न दिया। किशोरीने पत्र माँगे; परन्तु उसने वह पत्र भी न लौटाया और तेज़ीसे अपने घरकी ओर लौट पड़ा। किशोरी भी दूसरी ओर चली गई।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

भयानक भूल ।

रघुनन्दन वहाँसे लपकता हुआ सीधा घर आ पहुँचा । आज उसके हृदयमें भीषण दावानल धधक रहा था, वह मानो एक प्रकारसे उन्मत्त सा हो रहा था । अतः वह तेज़ीसे घर जाकर सीधा ऊपरवाले कमरेमें चला गया । वहाँ जाकर वह अपनी पलङ्गपर बैठ गया ।

लीलावती इस समय घरके अन्य कार्योंमें लगी थी ; एकाएक रघुनन्दनके पैरोंकी आहट पाकर वह दौड़ती हुई, ऊपर जा पहुँची, परन्तु ऊपर जाकर ज्योंही उसकी दृष्टि रघुनन्दनके चेहरेपर पड़ी त्योंही वह चौंक उठी । यह क्या, आज आँखें इतनी लाल क्यों हो रही है ? समूचा शरीर इस तरह काँप क्यों रहा है ? रह रहकर मेरी ओर क्रोध भरी दृष्टिसे क्यों देखते हैं ? लीलावती काठकी पुतलीकी तरह कुछ क्षणतक खड़ी रही । इसके बाद साहस बाँधकर रघुनन्दनके पास जाकर बोली,—"क्यों, क्या हुआ है, आज आपकी यह दशा क्यों हो रही है ?"

रघुनन्दनने एक बार कर्कश दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए एक पत्र उसके हाथमें देकर कहा,—"यह पत्र किसका लिखा है ?"

लीलावती बोली,—"गोविन्द बाबूने आरेसे यह पत्र भेजा था ? यह तो उनके ही हाथका लिखा हुआ है ?"

रघुनन्दन बोला,—"हा पापिनी! उसका नाम लेते भी तुझे शर्म नहीं आती। मैं नहीं जानता था, कि इतनी लिखी पढ़ी होकर भी तू यों पाप-पङ्कमें लिप्त हो जायगी! हा! तूने तो मेरा प्राण लेनेका ही सामान एकत्र किया था।"

लीलावती काँप उठी। यह कैसी बात है? इसका क्या मतलब है? उसने तुरन्त ही बड़े नम्र स्वरमें कहा,—आपको क्या मुझपर किसी प्रकारका सन्देह हुआ है? क्या बात है, स्पष्ट कहिये।"

रघुनन्दन क्रोधसे तिलमिला उठा। बोला,—"स्पष्ट क्या कहूँ? मेरी आँखोंमें ही धूल झोंकना चाहती है? क्या गोविन्द तेरा उपपति नहीं है?"

इतना सुनते ही लीलावतीका माथा घूम गया। वह बड़े कष्टसे बोली,—"इस कलंककी बात सुननेकी अपेक्षा मेरा मर जाना ही उत्तम था? परन्तु जब आपने कहा है, तब मुझे भी उत्तर देना ही पड़ता है। मैं धर्म्म-पूर्वक कहती हूँ, कि आपको भ्रम हुआ है। किसीने आपको कष्टमें डालनेके लिये ही यह चाल चली है। गोविन्द मेरे भाईके समान हैं।"

रघुनन्दनने और भी झिड़ककर कहा,—"क्यों झूठ बोलकर अपने पापका बोझ और भी बढ़ाती है? क्या यह पत्र भी तेरा लिखा हुआ नहीं है?" इतना कहकर रघुनन्दनने वह दूसरा पत्र भी लीलावतीके हाथमें दे दिया।

लीलावतीने पत्र देखते ही कहा,—"अवश्य मेरा है। और

यह मैंने उस समय आपके पास भेजा था, जब आप कलकत्तेमें पहला मकान बदलकर दूसरेमें गये थे।"

परन्तु रघुनन्दनको उसकी बातपर विश्वास न आया। उसने समझ लिया, कि लीलावती अपना पाप छिपानेके लिये ही यह मिथ्या-भाषण कर रही है। अतः उसने क्रोधसे कहा,—"पापिनी! दूर हो मेरे सामनेसे, मैं तेरा यह कलङ्कित मुख देखना नहीं चाहता।"

इतना कहकर उसने लीलावतीको जोरका एक धक्का दिया। लीलावती ज़ोरसे पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़ी और बेहोश हो गई। रघुनन्दन उसी समय तेजीसे पागलोंकी भाँति उस मकानसे बाहर निकल पड़ा।

इस समय रात्रिके लगभग ग्यारह बज चुके थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, रघुनन्दनके मस्तिष्कमें भयानक विचार उत्पन्न हो गये थे। समस्त संसार उसे सूनासा दिखाई देता था। वह मनही मन सोचता था, अब अपना कौन है? जिसे मैं अपनेसे भी अपना समझता था, जिसका दिवस रात्रि ध्यान कर अपने हृदयके उच्चतम सिंहासनपर बिठाया था,—वही जब विश्वासघातिनी निकल गई, तब फिर अब किसका भरोसा। मालूम होता है, कि यह समस्त संसार विश्वासघात और पापाचारका ही अखाड़ा है।

इसी तरह न जाने क्या क्या सोचता हुआ रघुनन्दन आगे बढ़ता चला जाता था, उसके हृदयने भयानक आघात पाया था। जो स्वयं दुश्चरित्र नहीं है, वह दूसरेको दुश्चरित्र होता देख भी

नहीं सकता। उसे गोविन्दशरायण पर भी बड़ा क्रोध था; परन्तु वह मनही मन कहता,—"जब अपना सोना ही खोटा है, तब परखनेवालेका क्या दोष ?"

योंही मन ही मन कुछ बड़बड़ाता, रघुनन्दन आगे बढ़ता चला जाता था, कि इसी समय किसीने उसका नाम लेकर जोरसे पुकारा। वह पुकार सुनकर रघुनन्दन चौंककर खड़ा हो गया। तुरत ही एक मनुष्यने वहाँ आकर लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। रघुनन्दनने बिगड़ कर पूछा,—"तुम कौन हो ?"

उस मनुष्यने कहा,—"अभी अपना परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु एक बात मैं पूछता हूँ, उसका उत्तर दीजिये, वह योगिनी वेशधारिणी किशोरी कहाँ है ?"

रघुनन्दनने आश्चर्य्यसे उस पुरुषकी ओर देखकर कहा,—"आपको उससे क्या काम है ?"

उस पुरुषने कहा,—"उसको दण्ड देना है। वह कोई साधारण स्त्री नहीं है, बड़ी ही भयानक है।"

रघुनन्दनने कहा,—"सो मैं जानता हूँ; परन्तु अपना ही सोना जब खोटा है, तब परखनेवालेका क्या दोष ?"

आगन्तुकने कहा,—"महाशय! मैं फिर भी आपको सावधान कर देता हूँ। ऐसा न हो, कि आपने उसकी बात न मानी है, इस लिये वह आपसे किसी प्रकारका बदला ले बैठे। इसी लिये जब मुझे यह मालूम हुआ, कि वह पटने गई तो मैं भी शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ; अच्छा आप इस समय कहाँ जा रहे हैं ?"

रघुनन्दनने कोई उत्तर न दिया। यह देख, आगन्तुक बोला,—"आपने मुझे अभीतक नहीं पहचाना। मैं हरिदास हूँ, आपको आज क्या हो गया है?"

रघुनन्दनने उपेक्षाके भावसे कहा,—"मेरा अन्तिम समय अब निकट है।" इतना कहकर वह आगे बढ़ना ही चाहता था, कि हरिदासने उसे पकड़ लिया। बोले,—"मैं आपको आगे बढ़ने न दूँगा। मेरे साथ आइये।"

परन्तु रघुनन्दनने उनकी बात न मानी। उसके मस्तिष्कमें इस समय घोर आन्दोलन मचा हुआ था; परन्तु हरिदासने भी रघुनन्दनको न छोड़ा। उन्होंने रघुनन्दनके पैर पकड़ कर कहा,—"जरा ठहरिये। आप मेरे गुरु हैं, आपके चरित्र-बलने मुझे जो शिक्षा दी है, वह जन्म भर न भूलूँगा। अतः मैंने मनही मन आपको अपना गुरु बनाया है, आपको अब कष्टमें न पड़ने दूँगा। बताइये, आज आपकी यह अवस्था क्यों है?"

रघुनन्दन क्या उत्तर दे। क्या अपने मुँहसे कहे, कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी प्रमाणित हुई, इसी लिये मैं घर छोड़कर चला आया हूँ।

अब हरिदास समझ गये, कि किशोरीने यहाँ आकर कोई न कोई उपद्रव अवश्य मचाया है। अतः उन्होंने कहा,—"आप, मुझे बताइये या न बताइये; परन्तु मैं ठीक जान गया हूँ, कि गङ्गातटपर किशोरीने आपके कान अवश्य भरे हैं और उसका फल भी हुआ है; परन्तु मैं समझता था, कि आप पढ़े लिखे मनुष्य हैं। एकाएक

किसीकी बातमें न आ जायँगे ; परन्तु इतनेपर भी मैं बराबर आपके पीछे था, क्योंकि अभी संसारका आपको बहुत कम अनुभव है। अतः मैं आपको सावधान कर देता हूँ। किशोरी बड़ी ही दुष्टा स्त्री है। जब आपने उसकी बात नहीं मानी, तब उसने आपसे बदला लेनेके विचारसे आपकी स्त्रीके कई पत्र जो आपके नाम कलकत्तेमें आये थे, छिपा रखे हैं, उसने उन पत्रोंसे तो कुछ काम न लिया ?"

नींदसे जागते हुए मनुष्यकी भाँति रघुनन्दन चौंक पड़ा। उसने घबड़ाकर कहा,—"क्या मेरी स्त्रीके पत्र उसने छिपा रखे थे ?"

हरिदासने कहा,—"मैंने अपनी आँखों देखा है, कि उसने आपके कई पत्र छिपा रखे हैं।"

रघुनन्दन सोचमें पड़ गया। उसका विवेक जागरित हो उठा। वह मनही मन बोला,—"मैं बिना विचारे यह क्या कर बैठा ; परन्तु गोविन्दनारायणका पत्र उसके पास कैसे जा पहुँचा।"

हरिदास बोले,—"चुप क्यों हो गये ?"

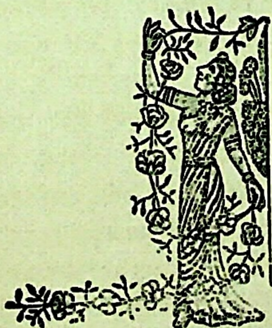
रघुनन्दनने कोई उत्तर न दिया। वह घोर चिन्तामें निमग्न होकर उसी जगह बैठ गया। इस समय उसकी विचित्र अवस्था हो रही थी। उसे अब अपनी भूल स्पष्ट दिखाई दे रही थी ; परन्तु वह जो कर गुज़रा था, उसके लौटनेका कोई उपाय न था।

एकाएक न जाने उसके ध्यानमें कौनसी बात आ गई, वह

तेज़ीसे अपने घरकी ओर पलट पड़ा। हरिदास भी उसके पीछे पीछे दौड़ पड़े।

परन्तु ज्योंही वह घरके दरवाजेपर पहुंचा; त्योंही ज़ोरकी क्रन्दन ध्वनि सुन पड़ी। रघुनन्दन घबड़ाकर भीतर घुस गया; परन्तु हरिदास बाहर रह गये।

रघुनन्दनने भीतर जाकर विचित्र ही दृश्य देखा। उसने देखा, कि दालानमें लीलावती लम्बी होकर पड़ी है और उसके सिरहाने बैठकर मोहिनी तथा चम्पावती दोनों ही ज़ोर ज़ोरसे रो रही हैं। पासमें ही गोविन्दनारायण काठके पुतलेकी भाँति माथेपर हाथ रखे खड़ा है।



अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।

परिताप ।

रघुनन्दन यह दशा देखकर अवाक् हो गया। यह क्या हो गया ? क्या यह प्रेम-लतिका अकालमें ही कालके गालमें चली गई ? यह मेरे ही अज्ञानका फल है, मेरे ही पापका भीषण परिणाम है। रघुनन्दनको देखकर दोनों स्त्रियाँ और भी ज़ोर ज़ोरसे रो पड़ीं। रघुनन्दनका चित्त व्याकुल हो उठा, उसकी आँखोंसे लगातार आँसुओंकी धारा बहने लगी, वह एक बार जोरसे हायकर उसी जगह भूमिपर बैठ गया। गोविन्दनारायण दौड़कर उसके पास जा पहुँचा और उसको शान्त करनेकी चेष्टा करने लगा।

बात यह थी, कि जिस समय रघुनन्ददने लीलावतीको जोरसे धक्का दिया और वह भूमिपर गिर पड़ी तथा रघुनन्दन वहाँसे तेजीसे किवाड़ खोलता हुआ भाग चला तो मोहिनी जो नीचे सोयी थी, एकाएक धमाकेकी आवाज़ सुनकर जाग पड़ी। इसी समय उसे रघुनन्दन जाता हुआ दिखाई दिया, उसने पुकारा भी परन्तु रघुनन्दनने कोई उत्तर न दिया। उसे कुछ सन्देह हुआ और तब वह दौड़ती हुई ऊपर जा पहुँची। ऊपर आकर उसने देखा, कि लीलावती जमीनपर पड़ी हुई है, उसके मस्तकसे रक्तकी धारा बह रही है। यह देखकर वह ज़ोरसे रो उठी। चम्पावती उस समय सो रही थी, मोहिनीका रुदन-शब्द सुनकर वह घबड़ा-

पश्चायन ।

म तुम्हारे पैर छूकर सत्य और धर्म पूर्वक कहता हूं, अब्बा, कि आपसे कभी ... आपसे

कर उठ बैठी। इसके बाद बहुत कुछ सुश्रूषा करनेपर भी लीलावतीको होश न आया, उस समय उनके पास कोई सहायक भी न था। मोहिनी तुरत ही दौड़ती हुई गई और गोविन्दनारायणको बुला लाई। वह भी लीलावतीकी यह अवस्था देखकर भौचकसा रह गया! परन्तु कुछ उपाय उसे भी न सूझ पड़ा।

इसी समय रघुनन्दन लौटकर आ पहुँचा और लीलावतीकी यह अवस्था देखकर घबड़ा गया। इसके कुछ ही क्षण बाद एकाएक किशोरीको पकड़कर खींचते हुए हरिदास उस मकानमें घुस आये।

भीतर आते ही हरिदासने बड़े ज़ोरसे कहा,—"इसी पापिनीके कर्म्मका यह फल है।"

एक अपरिचित मनुष्यको इस तरह भीतर घुस आते देखकर सब चौंक पड़े। इसी समय रघुनन्दनने सावधान होकर एक बार अपने चारों ओर देखा। सामने ही हरिदास किशोरीका हाथ पकड़े हुए खड़े दिखाई दिये।

रघुनन्दनने उठते ही लीलावतीकी ओर इशाराकर कहा,—"किशोरी! यह देखो, तुम्हारी प्रतिहिंसाका परिणाम!"

हरिदासने कहा,—"यह आपके मकानके पास ही खड़ी होकर कान लगा सुन रही थी, कि क्या हो रहा है? अब देखिये, मैं सब सच्ची सच्ची बातें इससे स्वीकार कराता हूँ।"

इस समय किशोरी भयसे काँप रही थी। हरिदासने उसकी जाकिटकी जेबसे तीन पत्र और भी निकालकर रघुनन्दनके सामने

रख दिये। बोले, देखिये यह पापिनी इन पत्रोंको अब भी अपने साथ ही रखे हुए हैं।"

रघुनन्दनने चकित दृष्टिसे उस ओर देखा तथा उन पत्रोंको देखकर बोला,—"क्या, यह मेरे सभी पत्र अपने पास छिपा रखती थीं; परन्तु जो होना था सो हो चुका, अब इन्हें छोड़ दीजिये। परन्तु किशोरी, तुम यह बताओ, कि गोविन्दनारायणवाला पत्र तुम्हें किस तरह मिला?"

किशोरी बोली,—"जब बात फूट ही गई, तब अब छिपाकर क्या होगा? थोड़ी देरतक हरिदास न आते तो मैं अपने मनोरथमें पूर्णतया सफल हो जाती। अस्तु, ईश्वरकी इच्छा। मैं इतनी ही देरमें समझ गई हूं, कि सज्जनोंपर ईश्वरकी सदा सहायता रहती है, नहीं तो इनका एकाएक आ जाना, और रघुनन्दनके पीछे जाकर पता लगाना, सहज काम नहीं है। यह ईश्वरकी माया है! वह पत्र मुझे इनके कमरेमें ही टेबलपर रखा मिला था। मैं इनके बहुतसे पत्र उठा लाई थी, मुझे पहले ही पता लग चुका था, कि गोविन्दनारायणमें और इनमें पत्र व्यवहार होता है; ये उस घरके समान हैं और बराबर यहां आते जाते हैं। इनसे किसी प्रकारका पर्दा भी नहीं है। यही कारण था, कि मैं इस विषयकी चेष्टा करने लगी, कि गोविन्द बाबूका पत्र मेरे हाथ लग जाये और अन्तमें ईश्वरकी दयासे मेरी इच्छा पूर्ण हुई। पत्र मैं उठा लाई थी, उनमें एक पत्र वह भी था, जो ठीक मेरी इच्छाके अनुकूल था।"

अभी तक इस विषयमें किसीको किसी बातकी खबर न थी। इतनी ही बातोंसे लोगोंको पता लग गया, कि असल बात क्या है? सब आश्चर्य्यसे उस योगिनी वेश-धारिणी किशोरीकी ओर देखने लगे।

इसी समय सब लज्जा संकोच त्याग एकाएक चम्पावती ज़ोरसे बोल उठी,—"सब झूठ, मैं अवश्य कह सकती हूं, कि इनपर झूठा कलंक लगाया गया है, यदि ये पापिनी हैं, तो सब संसारके मनुष्य, देवी देवता सब पापी हैं।"

सब आश्चर्य्यसे उसकी ओर देखने लगे। हृदयकी उत्तेजनावश चम्पावती इतने मनुष्योंके सामने बोल तो गई; परन्तु पीछे आप ही सकुचा गई। इतनेमें मोहिनी वैद्यको ले आई। उनकी चिकित्सासे थोड़ी देर बाद लीलावती होशमें आ अकचकाकर अपनी चारों ओर देखने लगी। उसको होशमें आते देखकर रघुनन्दनके मनमें क्या भाव उदय हुए सो तो वही जाने; परन्तु हम इतना कह सकते हैं, कि वह कुछ ओटमें इस तरह हटकर बैठ गया, मानो वह कुछ लज्जित और संकुचित हो।

परन्तु लीलावती पड़ी पड़ी ही, इधर उधर इस तरह देखने लगी, मानो उसकी दृष्टि किसीको खोज रही हो! जब कुछ क्षण इधर उधर दृष्टि दौड़ानेपर भी रघुनन्दन उसे न दिखाई दिया, तब उसने चम्पावतीसे धीरेसे कहा,—"वे कहाँ चले गये?" चम्पावती समझ गई। उसने गोविन्दनारायणकी ओर देखकर कहा,—"ज़रा अपने भय्याको बुलाओ।"

गोविन्दनारायणने रघुनन्दनको पुकारा। रघुनन्दन अब लाचार हो, सामने आ खड़ा हुआ। इस समय उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। लीलावतीने रघुनन्दनकी ओर देखा। दोनोंकी आँखें मिलीं। तुरन्त ही उसकी आँखोंसे भी अश्रु धारा बह चली। इस स्वाभाविक प्रेमको देखकर सबकी आँखोंसे नयन-नीर बहने लगे।

यह अवस्था देखकर वैद्यने कहा,—"यद्यपि इनकी मूर्च्छा भङ्ग हो गई है; परन्तु इनके माथेमें चोट अधिक आई है। इस समय किसी प्रकारकी उत्तेजनाका उत्पन्न होना अच्छा नहीं है।"

अब तक सबका ध्यान लीलावतीकी ओर था। वैद्यकी यह बात सुनकर सबका ध्यान छूटा। एकाएक रघुनन्दनका ध्यान किशोरी पर गया; वह यह मौका देखकर वहाँसे भाग गई थी।

हरिदासने भी चौंककर उधर ही देखा; परन्तु किशोरी कहीं दिखाई न दी। हरिदास बोले,—"वह मौका देखकर भाग गई।"

रघुनन्दन कहा,—"बड़े मौकेसे आप यहाँ आ पहुँचे, नहीं तो वास्तवमें आज इस गृहस्थीका नाश हो चुका था। अब उसे जाने दीजिये। कर्म्म-दण्ड देनेका अधिकार हमलोगोंको नहीं, परमेश्वरको है।"

हरिदास बोले,—"परन्तु न जाने, वह अभी इस तरह कितने घरोंको सत्यानाश करेगी। उसका इस तरह भाग जाना अच्छा नहीं हुआ।"

रघुनन्दन बोला,—"सबके पापोंका प्रायश्चित होता है। यदि उसने पाप किया है, तो बच नहीं सकती और हरिदास बाबू! हमलोगोंको जो इतना कष्ट भोगना पड़ा है, वह भी हमलोगोंके किसी पापका ही दण्ड है। न जाने कौनसा अविचार मेरे माथेमें प्रवेश कर गया था, कि जिसका यह दण्ड मिला और मैंने सहजमें ही किशोरीकी बातपर विश्वास कर लिया।"

गोविन्दनारायण अभी तक कुछ भी समझ न सका था। रघुनन्दनको इस ढङ्गकी बातें करते देखकर वह बोला,—"क्या हुआ है, भाई साहब!"

उसका इस ढङ्गका प्रश्न सुनकर सबको इस दुःसमयमें भी हँसी आ गई। हरिदासने कहा,—"कुछ नहीं। आपके सम्बन्धकी बात नहीं है।"

रघुनन्दनने कहा,—"नहीं, झूठ कहनेकी क्या आवश्यकता है। यद्यपि इनका हृदय शुद्ध था; परन्तु उस ढङ्गका पत्र यदि यह न लिखे होते तो आज इस प्रकारकी विपत्ति न आती। पत्र लिखते समय मनुष्यको बहुत सावधान रहना चाहिये और खास-कर जब किसी स्त्रीको पत्र लिखा जाये।" इतना कहकर रघु-नन्दनने आद्योपान्त सब घटनायें गोविन्दनारायणको कह सुनाईं। सुनकर उसे बड़ा दुःख, परिताप और आश्चर्य हुआ।

इस समयके बीच लीलावतीकी तबीयत बहुत कुछ सम्हल गई थी। वह उठकर बैठ गई, अवसर देखकर रघुनन्दनने कलकत्तेमें किशोरीके सम्बन्धकी घटी हुई समस्त घटनायें कह सुनाईं; जिसे

सुनकर लीलावती भी अच्छी तरह समझ गई, कि किस तरह उन्हें धोखा दिया गया था।

हरिदासने उसी दिवस कलकत्ते लिये रवाना होनेका विचार किया; परन्तु रघुनन्दनने उन्हें रोक लिया। हरिदासने भी रघुनन्दनका यह आग्रह सादर सहित स्वीकार कर लिया।



उन्तीसवाँ परिच्छेद ।

अन्तिम चेष्टा ।

कभी कभी किसी घटनाका आघात हृदयपर ऐसा कठोर हो जाता है, कि . वह फिर भुलाये नहीं भूलता और वह मनुष्यके जीवनकी धारा ही दूसरी ओर बदल देता है। ठीक यही अवस्था कमलेश्वरकी भी हुई। कमलेश्वरको आज तक यह धारणा थी, कि धन-बल सब कुछ कर सकता है, और फिर धन-बलके साथ यदि रूप-बल भी मिल गया तो फिर किसी स्त्रीमें यह शक्ति नहीं, कि इन दोनों शक्तियोंके सम्मुख वह अपना मान रख सकें और नत-मस्तकसे सामने न आ खड़ी हो ; परन्तु जगदम्बाने कमलेश्वरकी इस धारणापर पानी फेर दिया। वह मनही मन सोचने लगा,—"जगदम्बा न जाने किस धातुकी बनी है, कि न तो उस पर रूपका प्रभाव पहुँचता है और न धनका ही, मानो उसका हृदय सब प्रकारके सांसारिक सुखोंसे भी विरक्तसा हो गया है ; परन्तु इसका कारण क्या है ? शायद वह धनी परिवारमें ब्याही गई है, आजतक कभी दुःखमें तो पड़ी नहीं, इसी लिये वह किसीकी पर्वाह नहीं करती। मनुष्य वही जो दुःखमें पड़ने पर भी अपने विचारपर अटल रहे।

इस अन्तिम विचारने कमलेश्वरका .विचार पलट दिया। जगदम्बाके चरित्रबल और त्यागपर उसकी कुछ श्रद्धा हो गई थी,

परन्तु इस अन्तिम विचारने उसके विचारोंको फिर पलट दिया। जगदम्बाकी ओरसे उसके हृदयमें एक प्रकारकी जो निराशा पैदा हो गई थी, उसमें आशाको एक ज्योति लहलहा उठी। उसने मनही मन सोचा,—"देखूँ, इस बार भी जगदम्बा मानती है या नहीं? मुझपर किसीको सन्देह भी न होगा और काम भी बन जायगा। उसके अनेकानेक शत्रु उपस्थित हैं।" रातभर कमलेश्वर यूं ही बातें सोचता रहा। इसके कितने ही उपाय उसके मनमें उठे और मनही मन विलीन भी हो गये। अन्तमें उसने एक और भी उपाय स्थिर किया और उसी उपायको काममें लानेकी चेष्टा करने लगा।

अर्थके द्वारा जिस तरह ऐहिक और पारलौकिक अनेकानेक कार्य संसाधित होते हैं; उस तरह अनर्थ उत्पन्न होनेमें भी विशेष समय नहीं लगता। कमलेश्वर भी अपनी अभीष्ट-सिद्धिकी सब तय्यारियाँ कर सुअवसरकी प्रतीक्षा करने लगा।

एक रात्रिमें चन्द्रग्रहण पड़ा। भागलपुरके जिस स्थानमें ये रहते थे, वहाँसे गङ्गाकी धारा कुछ दूर पड़ती थी, तथापि सबकी सलाह हुई, कि आज गङ्गा स्नान करना चाहिये। इसी विचारसे जगदम्बा, उसकी सास, कई जमादार तथा मज़दूरिनोंको साथ लेकर गङ्गातटकी ओर रवाना हुई। यथा समय ग्रहण लगा। राहु अपनी कुटिलतासे समस्त चन्द्रको ग्रास कर गया। स्नान करनेवालोंका दलका दल गङ्गा जलकी ओर अग्रसर हुआ। इस समय बड़ी भीड़ हुई, लोगोंके धक्केमें जगदम्बा अपने साथियोंसे अलग

हो गई और इसके बाद ही वह क्या हुई, गङ्गाजीमें डूब गई अथवा कहीं अन्यत्र गायब हो गई, इस बातका बहुत कुछ पता लगानेपर भी किसीको पता न लगा। एक पर्वमें अपने पुत्र तथा दूसरेमें साध्वी पुत्र-वधूको खोकर जगदम्बाकी सास पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ी और बेहोश हो गईं। उनके साथी किसी तरह उन्हें उठाकर घर ले आए! इसके बाद बहुत कुछ खोज की गई, परन्तु जगदम्बाका कहीं पता न लगा।

वास्तवमें जिस समय भीड़ जोर की हुई, उस समय घातमें लगे हुए कमलेश्वरके मनुष्योंने भीड़में धक्के देकर जगदम्बाको उसकी साथिनोंसे अलग कर दिया और उसे जबर्दस्ती नावमें बैठाकर गङ्गाके पार ले चले। इस समय सर्वग्रास ग्रहण रहनेके कारण चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था, अपना पराया कोई मालूम न होता था।

वे मनुष्य जगदम्बाको लिये हुए सीधे गङ्गापार जा पहुँचे। उस पार बहुत दूरतक बालू पड़ती थी। पालकीका प्रबन्ध पहलेसे ही था। अतः उसे उस पार उतारकर इन मनुष्योंने जबर्दस्ती उसे पालकीमें चढ़ा दिया, कहारोंने पालकी उठाई और तेजीसे एक ओरको लेकर चल पड़े। इस समय जगदम्बाकी विचित्र अवस्था हो रही थी, वह समझ न सकती थी, कि यह क्या हो रहा है? कई बार उसने उन कहारोंसे पूछा भी परन्तु उन सबने कोई उत्तर न दिया। साथ ही पालकीके साथ जाते हुए एक भीषणकाय मनुष्यने उसे डाँटकर कहा,--"चुप रहो, नहीं तो बड़ी दुर्दशा की जायगी।"

लाचार ईश्वरके भरोसेपर विश्वास रखकर जगदम्बा चुप रह जाती थी। इसी तरह वे उस पालकीको लिये बहुत दूरतक चले गये और एक सुनसान जङ्गलमें ले जाकर जगदम्बाको पालकीसे उतारा।

जगदम्बा नीचे उतर आई। बाहर निकलकर उसने उनमेंसे एक मनुष्यकी ओर देखकर पूछा,—"तुम लोग यहाँ मुझे क्यों ले आये हो? तुम लोग किसके मनुष्य हो?"

इस बार उनमेंसे एकने कहा,—"हमलोग कमलेश्वर बाबूके मनुष्य हैं?"

सुनकर जगदम्बा अवाक् रह गई। उसने मनही मन सोचा, कोई चिन्ता नहीं। कमलेश्वरका इतना साहस न हो सकेगा, कि मुझपर किसी प्रकारका अत्याचार कर सके।

इसी समय कमलेश्वर भी एक ओरसे उस स्थानपर आ पहुँचा। उसको आते देखकर सबके सब मनुष्य वहाँसे चले गये।

इस बार कमलेश्वरको देखकर जगदम्बाको क्रोध आ गया; परन्तु बड़ी शान्तिसे उसने अपनेको सम्हालकर कहा,—"क्या उस रातके उपकारका यही बदला दिया है?"

कमलेश्वरने कोई उत्तर न दिया। उसको चुप देखकर जगदम्बाने फिर कहा,—"बोलते नहीं? आप तो उस दिवस प्रतिज्ञा कर आये थे, कि अब कभी कुराहपर न चलूँगा।"

कमलेश्वर बोला,—"क्या करूँ, किसी प्रकार भी मैं अपने

चित्तको संयत नहीं कर सकता। तुम्हारे सौन्दर्य-पाशने इस तरह मुझे उलझा लिया है, कि मैं एकदम विवेक-शून्य पागल हो रहा हूँ।"

जगदम्बाने कहा,—"आप मेरे भाईके मित्र हैं अतः मेरे भी भाई हैं। आपको अपनी दुखिया बहनपर अत्याचार करते क्या संकोच नहीं होता?"

कमलेश्वरने फिर कोई उत्तर न दिया? कुछ देर बाद बोला,—"पहले ही कह चुका हूँ, कि इस समय मुझे पाप पुण्यका विचार नहीं है, मैं चाहता हूँ, अपने अभिलाषाकी तृप्ति।"

जगदम्बा बोली,—"और फिर पापका भीषण प्रायश्चित्त। परन्तु मैं नहीं चाहती, कि आप पाप-पङ्कमें लिप्त हों। आप मुझे घरपर पहुँचा दीजिये।"

कमलेश्वरने दृढ़तासे कहा,—"असम्भव!"

जगदम्बाके मनमें इस समय न जाने कहाँका बल आ गया। उसने कहा,—"फिर आपकी जो इच्छा हो सो करें।" इतना कहनेके साथ ही उसका चेहरा तमतमा उठा। कमलेश्वर उसकी वह क्रोधमयी मूर्त्ति देख एक बार काँप उठा। फिर शान्त स्वरमें बोला,—"वृथा क्यों कष्ट भोगना चाहती हो?"

इस बार जगदम्बाने बड़ी शान्तिसे कहा,—"अपने धर्मके लिये, अपने कुलके लिये।"

परन्तु इस समय कमलेश्वर ज्ञान-शून्य हो रहा था। उसने एक बार चारों ओर देखा और जब कोई भी न दिखाई दिया;

तब दोनों हाथ फैलाकर जगदम्बाकी ओर यह कहता हुआ लपक पड़ा,—"देखूँ, तुम कैसे अपना धर्म्म बचाती हो।" जगदम्बा पीछे हट गई। अभी वह दो ही चार पग आगे बढ़ा था, कि एकाएक किसीने जोरसे उसे पकड़कर खींच लिया।

कमलेश्वर घबड़ा गया। उसने पीछे घूमकर देखा, यह शिव-नन्दन था और उसके पीछे एक दूसरा पुरुष जो इस समय अत्यन्त कृप हो रहा था, जिसके दाढ़ी और माथेके केश बहुत बढ़-कर जटा रूपमें परिणत हो गये थे। परन्तु इतनेपर भी सौन्दर्य्यकी प्रभा उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे फूटी पड़ती थी।

जगदम्बा भी एकाएक इन दोनोंको देखकर आश्चर्य्यमें आ गई। इसके बाद कुछ क्षणतक उस पुरुषके चेहरेकी ओर देखती रही। फिर एकाएक उसके चरणतलपर लोट पड़ी। कमलेश्वर भय-प्रकम्पित होकर एक ओर खड़ा हो गया।

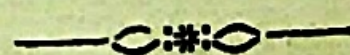




जगदम्बाकी धर्म्म रक्षा ।

अभी वह दो ही चार पग आगे बढ़ा था, कि एकाएक किसीने जोरसे उसे पकड़कर खींच लिया ।

तीसवाँ परिच्छेद।



तपस्याका फल।

आज जगदम्बाके घरमें आनन्दकी धूम मच रही है, जिस बातकी आजतक किसीको आशा न थी, वही निराशा आज आशामें परिणत हो गई है। इसीलिये आज यह आनन्द बधाई बज रही है। जगदम्बाकी सासके आनन्दका आज पारावार नहीं है। उसका इतने दिनोंका खोया हुआ पुत्र-रत्न आज उसे फिरसे प्राप्त हो गया है और जगदम्बाका कहना ही क्या है? मानो आज विधाताने उसकी इतने दिनोंकी तपस्या, त्याग, सच्चरित्रता और साधुताके फल स्वरूपमें ही उसकी खोयी हुई हृदयमणि उसे फिरसे ला दी है? आज अनेकानेक वर्ष बाद उसके शरीरपर फिर स्वर्णालङ्कार दिखाई दे रहे हैं, शून्य मस्तक सिन्दूरसे पूर्ण तथा केश-राशि वेणीबद्ध दिखाई दे रहा है। उसका हृदय-कमल जो इतने दिनोंके विरह-तापसे मुरझा गया था, आज प्राणेश्वरका दर्शनरूपी अमृत बिन्दुके पड़नेसे पुनः लहलहा उठा है। उसकी इस प्रसन्नताके कारण समस्त परिवार पुलकित हो रहा है।

जगदम्बावाले उसी मकानके एक कमरेमें कई पुरुष बैठे हुए हैं, जिनमें जगदम्बाके पति, उसके कई आत्मीय और रघुनन्दन भी हैं। सभी मानो उत्सुकतासे किसीकी राह देख रहे हैं।

थोड़ी ही देर बाद शिवनन्दन वहाँ आ पहुँचा। और रघु-

नन्दनको देखकर उसके चरणोंपर गिर पड़ा। रघुनन्दनने उसे उठाकर अपने गलेसे लगाते हुए कहा,—"भाई! तुमने जो कार्य किया है, उसे देखकर हमलोग आश्चर्य्य चकित हो गये हैं। हमलोग इसी आशामें यहाँ बैठे हैं, कि तुम अपना सविस्तर वृत्तान्त सुनाकर हमलोगोंकी उत्सुकताको दूर करो।"

शिवनन्दनने कहा,—"आपके अमोघ आशीर्वादसे ही मैं इस असाध्य-साधनमें सफल हो सका हूँ।"

रघुनन्दन बोला,—"सब ईश्वरकी दयाका ही फल है; परन्तु तुम अपना हाल तो बताओ।"

शिवनन्दनने मुस्कुराकर शारदाचरणकी ओर देखा। शारदाचरणने कहा,—"तब पहले मैं ही श्रीगणेश करूँ? आप लोगोंको अपनी अवस्था मैं क्या बताऊँ? आप लोगोंने सुना होगा, कि एक दिवस मकर संक्रान्तिके पर्वके अवसर में गङ्गा स्नान करनेके लिये गया था और उसी दिवससे मैं गायब हो गया।

जिस दिवस मैं मकर संक्रान्तिके अवसरपर गंगा स्नान करनेके लिये गया, उस दिवस बड़ी भीड़ थी। उसी भीड़में मैं भी आगे बढ़ता चला जाता था, मेरे साथी न जाने किधर भटक गये थे। अभी मैं स्नानकर अपने घरकी ओर लौटा ही था, कि एकाएक एक साधुने मुझे पुकारा। मैं निःशङ्क चित्तसे उनके पास चला गया। वे साधु मुझसे बातें करते हुए कुछ दूर निकल गये। मेरे चित्तमें किसी प्रकारकी शङ्का तो थी ही नहीं, अतः मैं निर्भय उनके साथ चला गया। इसी तरह हमलोग भीड़से

बहुत दूर जा पहुँचे। यह स्थान जन-शून्य था। यहाँ आते ही साधु वेशधारी कई मनुष्योंने मुझपर आक्रमण किया। उन लोगोंने मेरे पास जो कुछ था, सब छीन लिया और मुझे पकड़कर ले चले। मैं उनसे बहुत रोया गिड़गिड़ाया, परन्तु किसीने कुछ न सुना। वे सब मुझे पकड़कर बहुत दूर ले गये। उसके बाद ही मैं एक स्थानमें कैद कर दिया गया, मुझे यह भी न मालूम हुआ, कि मैं क्यों पकड़ा गया हूँ और मुझे पकड़नेवाला और इस तरह कैदकर रखनेवाला कौन है। एक साधु वेशधारी मनुष्य ही मुझे भोजन दे जाता था, और बहुत कुछ पूछनेपर भी कुछ न बताता था। इसी तरह मेरे ये कई वर्ष बीत गये और मुझे कुछ पता न लगा, कि यह क्या अवस्था है, और क्या बात है। इसके बाद एकाएक साधु वेशमें ही ये मेरे पास जा पहुँचे और उसी दिवस रात्रिके समय हमलोग भाग निकले।"

इतना कहकर शारदाचरण चुप रह गया। अब शिवनन्दनने कहना आरम्भ किया—

"मैं पहले ही आपको पत्रमें लिख चुका था, कि मैंने जगदम्बाके हृदयमें बड़ा कष्ट पहुँचाया है। अतः जिस दिवससे आपने मुझपर दयाकर मुझे फिर अपने मकानमें बुला लिया, तबसे मेरे जीवनकी धारा बदल गई। एक दिन मैंने सोये ही सोये स्वप्नमें देखा, कि शारदाचरणजी अभी जीवित हैं। उस स्वप्नका प्रभाव हृदयपर कुछ ऐसा जम गया, कि मैं स्वप्नको असत्य समझनेपर भी उसे भुला न सका। उस स्वप्नने मानो मेरे हृदयपर और

भी आघात पहुँचाया। इसके बाद मैं इनके गायब होनेकी घटनाओंपर विचार करने लगा। खूब अच्छी तरह विचार करनेपर मालूम हुआ, कि सम्भव है, कि इनके गायब हो जानेमें कोई रहस्य हो, क्योंकि इनके गायब हो जानेके बाद ही मुकद्दमेबाज़ी आरम्भ हो गई थी और इनके अन्य रिश्तेदार जो इनकी सम्पत्तिपर दाँत लगाये हुए थे, इसी चेष्टामें लगे थे, कि इनकी सम्पत्ति उनके हाथोंमें आ जाये। इन घटनाओंपर विचार करनेसे मेरा सन्देह और भी दृढ़ होता गया और अन्तमें मुझे निश्चय हो गया, कि ये शत्रुओंके कुचक्रमें जा फँसे हैं। उसी दिवस मैं आपको पत्र लिखकर वहाँसे चल पड़ा। वहाँसे निकलकर सीधा भागलपुर आया। वहाँ कई दिनोंतक इनके विपक्षियोंका पता लगाता रहा।

इसी अवसरपर मैंने देखा, कि इनके विपक्षियोंके यहाँ गेरुआ वस्त्रधारी एक मनुष्य बराबर ही आया करता है और इनके विपक्षी धनपति बाबू बराबर उससे घुल घुलकर बातें किया करते हैं। इन बातोंका विशेष पता मुझे धनपति बाबूके ही एक जमादारसे मिला था, जिसपर अप्रसन्न होकर उन्होंने उसके कुछ रुपये भी दबा रखे थे। इसी लिये वह उनसे बराबर अप्रसन्न रहता था। मैंने बहुत कुछ प्रलोभन देकर उस जमादारको अपने दलमें मिला लिया था।

वह साधु मुझे नहीं पहचानता था। इसीलिये जब वह एक दिवस उनसे भेंटकर लौटा तो मैंने पीछा किया। वह रेलपर सवार होकर सीताकुण्डकी ओर गया और वहाँसे फिर जङ्गल

मैदान पार करता हुआ एक पुराने मकानमें जा पहुँचा। इस मकानमें और भी कई ऐसे ही मनुष्य दिखाई दिये।

अब मैं भी उस मकानसे कुछ दूर एक गाँवमें जाकर ठहरा और नित्यप्रति उस मकानके अधिवासियोंकी टोह लेने लगा। उस मकानके अधिवासी उसी गाँवसे सौदा लेने आते थे। एक बनियेके यहाँ वही मनुष्य बराबर बहुत देरतक बैठा रहता था, जिसके साथ मैं यहाँतक आया था।

अब मैं भी उस बनियेके पास सौदा लेनेके बहाने जाकर बहुत देरतक बैठने लगा। योंही कई दिवसतक उससे मिलकर मैंने उससे दोस्ती पैदा कर ली। इसके बाद एक दिन मैंने उससे कहा,—"सुना है, कि उस जंगलवाले मकानमें अच्छे अच्छे साधु रहते हैं। एक दिन उनका दर्शन करनेकी इच्छा है; परन्तु अकेले जाते भय होता है?"

बनियां सरल हृदय पुरुष था। वह मेरी बात सुनकर बोला,—"साधु नहीं क्या है? न जाने कहांके सब बदमाश आकर इकट्ठे हुए हैं, यह जमीन्दारी तो धनपति बाबूकी है। उनका ही मकान है। सुना है, कि किसी संन्यासीको दानकर दिया है; परन्तु ये ही बदमाश संन्यासीका वेश बनाये यहाँ आनन्द करते हैं। इनके उपद्रवसे तो गाँवकी स्त्रियोंने गांवके बाहर जाना छोड़ दिया है।"

छूटते ही मैंने कहा;—"मैंने तो सुना है, कि किसी भले आदमीको इन लोगोंने यहाँ कैद कर रखा है।"

वह बनियां बोला,—"सुना तो मैंने भी है, लेकिन यह बात

आप कभी अपने मुँहसे न निकालियेगा। आज कई वर्षसे वे यहाँ कैद हैं।"

इससे अधिक वह बनिया कुछ बता न सका। मैं अब बड़े फेरमें जा पड़ा। किस तरह शारदाचरणका उद्धार करूँ, कोई उपाय न दिखाई देता था। अन्तमें एक दिन माथा मुड़ा साधुओंसा वेश बनाकर मैं भी उस मकानमें घुस गया। उस दिन खूब वर्षा हो रही थी। मैंने उनसे आश्रय माँगा। उन लोगोंने भी मुझे अकेला समझकर मुझे आश्रय दे दिया। रात्रिके बारह बजे जब सब सो गये तब मैंने उनकी खानातलाशी लेनी आरम्भ की। कई कमरे कोठड़ियोंमें घूमता हुआ, मैं एक ऐसी कोठड़ीके दरवाज़ेपर जा पहुँचा, जिसमें बाहरसे तो ताला बन्द था; परन्तु भीतर दीया टिमटिमा रहा था।

यह अवस्था देखकर मुझे सन्देह हुआ, कि हो न हो, कोई मनुष्य इसमें अवश्य है। मैंने साहस कर बहुत धीरे धीरे उनका नाम लेकर पुकारा। संयोगवश ये जाग रहे थे। इन्होंने भीतरसे ही पूछा,—"कौन ?"

इतना सुनते ही मैं वहाँसे लौट आया। आज रातमें घोर वर्षा हो रही थी। उस दिवस ग्रहण था, इनमेंसे कई तो गङ्गा स्नानके लिये चले गये थे, दो मनुष्य रह गये थे। एक तो जाड़ा, दूसरे वर्षाके कारण वे दोनों सिकुड़े पड़े थे। वे ऊपरके तल्लेमें थे और मैं नीचे। मैं एक बार साहस कर ऊपर चढ़ गया। देखा, कि वे दोनों घोर निद्रामें पड़े हैं, यह देखकर मैंने बाहरसे ही साँकल

चढ़ा दी। इसके बाद सदर दरवाजा भी भीतरसे बन्द कर दिया। अब मैं किसी शस्त्रके फेरमें पड़ा जिससे ताला खोला जाये। सौभाग्यवश एक बड़ी छुरी वहाँ मिली और एक लोढ़ा। मैंने साहस बाँधकर उसीसे ताला खोलना शिर किया। ऊपर सोये मनुष्योंके जाग उठने तथा बाहरसे मनुष्योंके आ जानेका पूरा पूरा भय था; इसलिये बड़ी सावधानीसे सब काम करने पड़ते थे। जो हो ईश्वरकी दयासे लगभग एक घण्टेके परिश्रममें मैं ताला खोलनेमें समर्थ हुआ। इसके बाद किवाड़ खोलकर मैंने इनको बाहर निकाला और किसी तरह हमलोग भागते हुए ठीक ऐसे स्थानपर पहुँचे जहाँ जगदम्बाको उठा ले जानेवाला उससे झगड़ रहा था और वह अपनेको उसके चँगुलसे बचाना चाहती थी। ईश्वरकी दयासे हमलोग ठीक समयपर वहां पहुँच गये और जगदम्बाकी रक्षा हुई।

यद्यपि उस मनुष्यने जगदम्बापर अनेक अत्याचार किये हैं, परन्तु जब उसने जगदम्बाके पैर पकड़कर उससे क्षमा माँगी है और जब जगदम्बाने उसे क्षमाकर उसे अपना भाई स्वीकार कर लिया है, तब मैं अब उसका नाम लेना उचित नहीं समझता। अब यह तो पता लग ही गया है कि इनको कष्ट पहुँचाने और इतने दिनोंतक सतानेवाले धनपति बाबू ही थे। अतः उनपर आपको मुकद्दमा चलाना अथवा जो कुछ दण्ड देना हो सो दें।"

इतना कहकर शिवनन्दन चुप हो गया। रघुनन्दनने मतलब भरी दृष्टिसे शारदाचरणकी ओर देखा।

शारदाचरणने कहा,—"मैंने कोई पाप किया था, उसीका यह फल भोगना पड़ा है। मुझे अपनी ओरसे कोई कार्रवाई करनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।"

रघुनन्दनने कहा,—"जैसी आपकी इच्छा।" अभी इतनी बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय भयसे काँपते हुए धनपति बाबू वहाँ आ पहुँचे।

इनको देखकर सब कोई उठ खड़े हुए। शारदाचरणने बड़े आव भगतसे उन्हें प्रणामकर अपने पास बैठाया। इसके बाद बोले,—"आपके आशीर्वादसे इतने दिनों बाद मेरा छुटकारा हुआ? आपलोग तो प्रसन्न हैं?"

धनपति बाबू बोले,—"हाँ, अच्छे ही हैं।" इसके बाद बड़े ध्यानसे शारदाचरणका चेहरा देखने लगे।

यद्यपि शारदाचरणने कुछ न कहा; परन्तु शिवनन्दनसे चुप न रहा गया। वह बोला,—"धनपति बाबू! यह मकान जिसमें ये क़ैद थे, आपका ही तो है। आपने शायद किसी संन्यासीको दान कर दिया है?"

धनपति बाबूने कोई उत्तर न दिया। कुछ क्षण बाद शारदा-चरण बोला,—"आप मेरे पूज्य हैं। इनको कहने दीजिये। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिये। बहुतसे प्रमाण मिल जानेपर भी आपको कष्ट पहुँचानेके लिये हमलोग कोई कार्रवाई न करेंगे।"

धनपति बाबूने आँखोंमें आँसू भरकर कहा,—"बेटा! तुमसे ऐसी ही आशा है। इन दुर्बुद्धि लड़कोंके फेरमें पड़कर ही मैं

काण्डाकाण्ड ज्ञान शून्य हो गया और उनकी शुभेच्छासे ही तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

शारदाचरणने कहा,—"आप कैसी बात कहते हैं। आप मेरे पूज्य हैं। आपको क्षमा माँगना क्या उचित दिखाई देता है ? आप एकदम निश्चिन्त रहिये। उसी अपराधका ही मुझे यह दण्ड मिला है। इसमें आपका कोई अपराध नहीं है।"

वृद्ध धनपति बाबू बोले,—"बच्चा! जुग जुग जियो! ईश्वर तुम्हारी बढ़ती करे। मैं आज ही सब मुक़द्दमा उठवा देता हूं।"

इतना कहते कहते वृद्ध धनपति बाबू वहाँसे चले गये।



शारदाचरणने कहा,—"मैंने कोई पाप किया था, उसीका यह फल भोगना पड़ा है। मुझे अपनी ओरसे कोई कार्रवाई करनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।"

रघुनन्दनने कहा,—"जैसी आपकी इच्छा।" अभी इतनी बातें हो ही रही थी, कि इसी समय भयसे काँपते हुए धनपति बाबू वहाँ आ पहुँचे।

इनको देखकर सब कोई उठ खड़े हुए। शारदाचरणने बड़े आव भगतसे उन्हें प्रणामकर अपने पास बैठाया। इसके बाद बोले,—"आपके आशीर्वादसे इतने दिनों बाद मेरा छुटकारा हुआ? आपलोग तो प्रसन्न हैं?"

धनपति बाबू बोले,—"हाँ, अच्छे ही हैं।" इसके बाद बड़े ध्यानसे शारदाचरणका चेहरा देखने लगे।

यद्यपि शारदाचरणने कुछ न कहा ; परन्तु शिवनन्दनसे चुप न रहा गया। वह बोला,—"धनपति बाबू! वह मकान जिसमें ये क़ैद थे, आपका ही तो है। आपने शायद किसी संन्यासीको दान कर दिया है?"

धनपति बाबूने कोई उत्तर न दिया। कुछ क्षण बाद शारदाचरण बोला,—"आप मेरे पूज्य हैं। इनको कहने दीजिये। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिये। बहुतसे प्रमाण मिल जानेपर भी आपको कष्ट पहुँचानेके लिये हमलोग कोई कार्रवाई न करेंगे।"

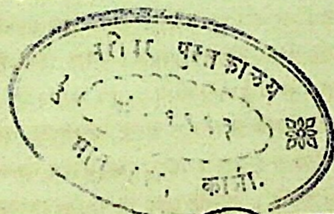
धनपति बाबूने आँखोंमें आँसू भरकर कहा,—"बेटा! तुमसे ऐसी ही आशा है। इन दुर्बुद्धि लड़कोंके फेरमें पड़कर ही मैं

काण्डाकाण्ड ज्ञान शून्य हो गया और उनकी शुभेच्छासे ही तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

शारदाचरणने कहा,—"आप कैसी बात कहते हैं। आप मेरे पूज्य हैं। आपको क्षमा माँगना क्या उचित दिखाई देता है? आप एकदम निश्चिन्त रहिये। उसी अपराधका ही मुझे यह दण्ड मिला है। इसमें आपका कोई अपराध नहीं है।"

वृद्ध धनपति बाबू बोले,—"बच्चा! जुग जुग जियो! ईश्वर तुम्हारी बढ़ती करे। मैं आज ही सब मुक़द्दमा उठवा देता हूं।"

इतना कहते कहते वृद्ध धनपति बाबू वहाँसे चले गये।





उपसंहार।

रघुनन्दन अपनी भूलपर बहुत कुछ पछताया। उसके अविचारके कारण लीलावतीको बड़े कष्टमें पड़ना पड़ा था। उस घटनाका उसके चित्तपर ऐसा आघात पहुँचा, कि वह महीनों बीमार रही। उस समय रघुनन्दनने उसको बड़ी सेवा की और उसे मानसिक तथा शारीरिक अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़े, यही उसके अविचारका प्रायश्चित हुआ।

शिवनन्दन, जगदम्बा तथा शारदाचरण सबने ही कमलेश्वरको क्षमा कर दिया। इनके इस चरित्रबलने कमलेश्वरके जीवनको भी जीवन धारा प्रदान कर दी। इनके आचरणोंने उसके हृदयपर ऐसा प्रभाव पहुँचाया, कि उसने सब दुर्व्यसन त्याग दिये और सुराहपर आ गया।" जगदम्बा उसे अपने भाईके समान मानने लगी। अब वह कमलेश्वरसे पर्दा नहीं करती, कमलेश्वर और शिवनन्दनमें अब भी मित्रता है, वह बराबर रघुनन्दन तथा शारदा चरणके यहाँ आता जाता है। उसके साथ इन सबका ही परम आत्मीयता व्यवहार है।

कमलेश्वर तथा शिवनन्दनके मुकद्दमेके समयसेही रघुनन्दनको वकालतके कार्य और अदालती झगड़ेसे ऐसा विराग हो गया है कि उसने वकालत पढ़ना छोड़ दिया और एक स्कूलमें शिक्षकका कार्य कर लिया। लीलावती एक आदर्श गृहिणी बन गई।

अब रघुनन्दन और लीलावतीने धीरे धीरे सेवा कार्यपर ध्यान देना आरम्भ किया। पटनेमें जहाँ कभी किसीको कष्टमें पड़नेकी बात सुन पड़ती वहीं रघुनन्दन तथा लीलावती शारीरिक तथा कमलेश्वर आर्थिक सहायता देनेके लिये प्रस्तुत रहता था।

कमलेश्वरने शिवनन्दनको कोई नौकरी नहीं करने दी। उसने एक विराट "अनाथालय" स्थापित किया। शिवनन्दनको इसीका भार दिया गया।

यथा समय रघुनन्दनने पुत्रका मुख देखा। एक दिन रघुनन्दन अपने मकानपर ही गोदमें बालक लिये खिला रहा था। इसी समय एक स्त्री दौड़ती हुई उसके पास आ पहुँची। यह किशोरी थी। किशोरीकी इस समय बड़ी ही दुरवस्था हो रही थी।

बड़ी कठिनतासे रघुनन्दनने उसे पहचाना। किशोरी रघुनन्दनके पैर पकड़कर बोली,—"मेरे पापका भयानक प्रायश्चित हुआ है। अब भोजनका ठिकाना नहीं है। आप मुझे आश्रय दीजिये।"

रघुनन्दनने कातर दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कहा,—"तुम्हारी यह दशा क्यों?"

किशोरी बोली,—"आपके यहाँसे जाकर मैंने एक गृहस्थसे विवाह किया; परन्तु उससे न पटनेके करण उसे छोड़कर तीन-रैसे किया। वह थोड़े दिनतक तो मेरे मतानुसार रहा इसके बाद उसने मेरी समस्त सम्पत्तिका नाश कर दिया और सब थंभी

भाग गया। अब मेरे भोजनका भी ठिकाना नहीं है। आज आठ दिनोंसे मैं भिक्षा मांगकर खाती हूं।"

रघुनन्दनने लीलावतीको बुलाकर उसे दिखाया। उसकी यह अवस्था देखते ही लीलावतीने बड़े आदरसे उसका हाथ पकड़कर उठाया। बोली,—"तुम्हारी सब बातें मैं सुन चुकी हूँ, आज तुम्हारी यह अवस्था क्यों?"

किशोरी बोली,— यदि अपने मृत-पतिका नाम स्मरण करती ही बैठी रहती तो आज यह दशा न होती। यह मेरे पापका प्रायश्चित है।"

कमलेश्वरने रघुनन्दनके आग्रहसे उसे अनाथालयमें स्थान दिया और किशोरी उसीमें रहने लगी।



विचित्र-समाज-सेवक

(लेखक-पण्डित चन्द्रशेखर पाठक)

सभी परिश्रम करते हैं, पर पथ है अबतक मिला नहीं।
सेवक बने अनेक कमल भारतका अबतक खिला नहीं॥
जन समाजमें सच्चा टाँका, किसीसे अबतक सिला नहीं।
पढ़ देखो यह पुस्तक, क्यों पत्ता भी अबतक हिला नहीं॥

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि हिन्दी बङ्गवासी, ब्राह्मण-सर्वस्व आदि पत्रोंके विद्वान सम्पादकोंने सत्य ही मुक्त-कण्ठसे कहा है, कि हिन्दी-संसारमें यह एक अनोखा, अपूर्व और अद्भुत उपन्यास है ; क्योंकि इसमें दिखाया गया है, कि शङ्करनाथ नामक सज्जन भारतवर्षका प्राचीन ढङ्गसे सुधार करना चाहते हैं। दूसरे सी० लाल इसे ठीक विलायत बना देनां चाहते है। इसमें शङ्करनाथ का समाज-सेवाके लिये प्रस्तुत होकर नाना प्रकारके कष्ट भोगना, बद्रीनाथकी चालें, अन्नपूर्णाका गायब हो जाना, समाजका विपक्ष में खड़े हो जाना, पुलिसकी अद्भुत कार्रवाई, महन्तका अत्याचार, समस्त साधुओंका परिवर्त्तन, विलायती चालपर चलनेवाली स्त्रियोंका विचित्र चरित्र, विलायती ढङ्गसे स्त्रियोंकी शिक्षाका भीषण परिणाम, मिसेस कर्टिस नाम्नीएक विदेशी रमणीका अद्भुत चरित्र, पादड़ियोंकी लीला आदि इतनी आश्चर्य्यप्रद, उपदेश-प्रद तथा नीति-प्रद घटनायें लिखी हैं, कि पुस्तक हाथमें लेकर छोड़ने जी नहीं चाहता। हम ज़ोर देकर कह सकते हैं, कि इस पुस्त- खरीदकर आपको कभी पछताना न पड़ेगा। कई चित्रोंसे भित मनोहर रेशमी जिल्द सहित पुस्तकका मूल्य ३)

कृष्ण-सुदामा

(लेखक—जमुनादास मेहरा।)

सुखी सुख-साधनाका सर्वदा सम्मान करते हैं।
अनाड़ी अपने ही आनन्दका अभिमान करते हैं॥

यह नाटक—भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके परम भक्त सुदामाजीके पवित्र जीवन वृतान्तका जीता जागता चित्र है; इसमें भक्ति तथा दरिद्रका विचार-वैचित्र है। श्रीकृष्ण तथा सुदामाका वनमें लकड़ो काटने जाना, भयानक आँधी पानीमें श्रीकृष्णका अग्नि उत्पन्न करना, सुदामाजीका श्रीकृष्णके भागका भोजन छिपा कर दुर्दैवको अपना संगी बनाना, दरिद्रका सुदामाजीको विपत्तिके गहरे कूपमें गिराना, भक्तिका भक्तको द्वारिका पुरीमें [illegible] आना और दरिद्रपर विजय पाना, श्रीकृष्णजीका सुदामा पुरी बसाना, श्रीकृष्ण तथा सुदामाकी अनोखी ठिठोली आदिके दृश्य आपको प्रत्यक्ष ही दिखा देंगे कि :—

विपतमें वित्रणके, वैरी विरोधी व्यंग पोते हैं।
भजन भगवानसे, भक्तोंके भव भय भंग होते हैं॥

यह नाटक—हास्य-रसके कई दृश्योंसे परिपूर्ण है। इसमें सेठ सूमदासके दो पुत्रोंका पिताकी पूंजीपर हाथ फेरनेमें दो साधुओंकी सहायतासे विजय पाना, सूमदासका अपनी करतूतपर पछताना और रसायन बनानेकी लालचमें पड़कर धनको हवा लगाना, इत्यादि दृश्य हंसा हंसाकर आपका पेट फुला देंगे, और साथ ही यह शिक्षा दिला देंगे कि :—

धनी धन, धाम, धन्धेमें धुरन्धर ध्यान धरते हैं।
दरीद्री देख दुखु दीन दमड़ी दान करते हैं॥

विश्वामित्र.

(ले० श्रीयुत जमुदास मेहरा)

हमारी नाट्य ग्रन्थमालाका यह पञ्चम ग्रंथ आदर्शकी खान है, चरित्र-गठनका महामन्त्र है और भारतकी पूर्व अवस्थाको सम्मुख ला रखनेवाला एक दुर्लभ तंत्र है। कान्यकुब्जाधिप महाराज विश्वामित्रकी जीवनी कितने ही उपदेशोंसे परिपूर्ण है, उनका आखेटके लिये निकलकर वशिष्ठके आश्रममें उपस्थित होना, कामधेनुके सम्बन्धमें वशिष्ठसे विवाद होना, कामधेनुको प्राप्त करनेके लिये विश्वामित्रका अनेकानेक छल-बल-कौशलका प्रयोग करना, अन्तमें सबसे हारकर तपस्या करना, उसी समय इन्द्रकी आज्ञासे मेनका नामकी अप्सराका आना, उनका तप भङ्ग करना, शकुन्तलाका जन्म, अयोध्याके राजा त्रिशंकुकी अद्भुत कथा, उसका चाण्डाल बन जाना, वशिष्ठके सौ पुत्रोंको मार डालना, फिर विश्वामित्रका उसे सदेह स्वर्ग भेजनेकी चेष्टा करना, स्वर्गमें उसके न जा सकनेके कारण नये स्वर्गका निर्माण, अन्तमें विश्वामित्रका तपोबलसे ब्रह्मर्षिका पद प्राप्त करना आदि कितनी ही उपदेशप्रद घटनाओं, खड़ी बोलीकी अनोखी शायरियों तथा अनेकानेक ढङ्गकी कविताओं और सुरम्य दर्शनीय चित्रोंसे यह पुस्तक भी सुशोभित हो रही है। हमारा अनुरोध है, कि यदि आपको पुस्तकें पढ़नेका कुछ भी शौक हो तो एक बार इसे अवश्य पढ़ें। कई चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य १)

महात्मा विदुर।

सचित्र जीवन चरित्र।

(लेखक—पं० नरोत्तम व्यास)

जिस माननीय परम नीतिज्ञ बुद्धिमानकी शुभ्र नीतिसे भारत जैसा बृहत ग्रन्थ उज्वल हो रहा है, जिनके चरित्रों पदपर नीतिज्ञता प्रकट होती है, यह उन्हीं नीतिवान, f महात्मा विदुर महाराजका बड़ी खोज और गवेषणासे लिखा विशद जीवन चरित्र है। इसमें उनके जीवनकी समस्त घ तो आही गई हैं, साथ ही उनकी समस्त नीतियाँ भी लिख दी गई हैं। जिन्हें पढ़कर मूर्खसे मूर्ख मनुष्य भी बुद्धिमान, चतुर और नीतिज्ञ बनकर संसारके सभी कार्य सफलता और नीतिज्ञतासे सम्पादन कर सकता है। यह पु इस योग्य बनाई गई है, कि सब पाठशालाओंमें पढ़ाई लड़कोंको इनाममें दी जाय और घर घरमें इसका प्रचार और पाठन हो। हम यह मुक्त कण्ठसे कह सकते हैं, कि इसमें और सुगन्ध दोनों ही सम्मिलित हैं। पुस्तक इतनी रोचक भ लिखी गई है, कि उपन्यासोंसा आनन्द आता है और सा बड़ा भारी उपकार इससे यह होता है, कि विदुरजीकी नीतियाँ समझमें आ जाती हैं और उन्हें पढ़कर मनुष्य एक अ उपदेश ग्रहण कर सकता है। मूल्य १॥।) रेशमी जिल्द २।)